ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अक्टूबर २०१८ Date of Printing = 05-10-18
प्रकाशन दिनांक= 05-10-18

वर्ष ४७ : अङ्क १२
दयानन्दाब्द : १९४
विक्रम-संवत् : भाद्रपद-आश्विन २०७५
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११९

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

- ❑ उपदेशक को परमात्मा... २
- ❑ वेदोपदेश ३
- ❑ हृदय के अर्थ ४
- ❑ भारत युवा और राजनीति ७
- ❑ इतिहासकार की कलाकारी-४ १०
- ❑ दलित मुस्लिम एकता..... १५
- ❑ हिन्दू मुस्लिम एकता..... १७
- ❑ भौतिकवाद...... १८
- ❑ गुरुकुलीय जीवन २०
- ❑ हिन्दी दिवस.... २१
- ❑ योगी दयानन्द २२
- ❑ जब हिमालय रो पड़ा २४
- ❑ को वेदानुद्धरिष्यति २६

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

उपदेशक को परमात्मा की ओर से अलौकिक शक्ति कब मिलती है?

(नोट : महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने जोधपुर से दिनांक ५ अगस्त, १८८३ को उदयपुर नरेश महाराणा सज्जनसिंह के मन्त्री श्री किसन (कृष्ण) सिंह जी बारहठ को एक महत्वपूर्ण पत्र लिखा था। वैसे तो इस पूरे पत्र में कुल तीन बिन्दु हैं परन्तु यहाँ केवल प्रथम दो बिन्दुओं को प्रस्तुत किया गया है। इस पत्र में महर्षि ने धर्म रक्षा के लिए ईसाई आदि के साथ शास्त्रार्थ या वार्तालाप करने के लिए उपदेश में कौन-सी योग्यता अपेक्षित है, किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है इत्यादि महत्वपूर्ण बातों का संकेत किया है। आशा है कि आर्यों को यह पत्रांश पठनीय लगेगा।

प्रस्तुतकर्त्ता : भावेश मेरजा)

ओम्

श्रीयुत् बारहठ किसनजी,

आनन्दित रहो।

पत्र आपका आया। समाचार विदित हुआ। यह पत्र सर्वाधीशों (उदयपुराधीशों) को दृष्टिगोचर करा देना।

१. मेरी भी यह मनसा नहीं है, न थी कि पादरियों के सामने शास्त्रार्थ ही किया जाय, किन्तु जिससे कोई अपनी प्रजा का पुरुष उनके मजहब में न फंसे वैसा उपदेश किया जाय इसलिये वे छोटे-छोटे खण्डन जो कि मैंने भेजे हैं वे छपवा के योग्य-योग्य पुरुषों को चाहे वे पण्डित हों वा बुद्धिमान् हो बांट कर प्रचार करने से उनके फंदे में कोई भी न फंसेगा। आप से आप बहुत-से उपदेशक उसी राज्य के पुरुष हो जायेंगे। इसका बांटना विशेष कर सरदार हाकम भूमिये थाने वा अच्छे-अच्छे गामों में अथवा जहां कहीं कोई बुद्धिमान् हो उसको देखकर उन ईसाइयों को हटा दे सकेंगे। और यदि श्रीमानों के नियमानुसार उपदेश कहीं करना हो तो वहां राज के नौकर बहुत-से पण्डित हैं जिसको योग्य समझे उसको यह दोनों पुस्तक देके उपदेशक कर देवें।

२. जैसा श्रीमान् महाशयों ने लिखा है वैसा उपदेशक आर्य समाज से आने में अशक्य नहीं है। किन्तु जो उस पत्र में नियम लिखे हैं उनके अनुसार और ईसाई आदि का खण्डन होना अशक्य है। क्योंकि जब तक उपदेशक झूठ मत को मानेगा और दूसरे झूठे मत के खण्डन में प्रवृत्त होगा कुछ भी न कर सकेगा। जब तक मनुष्य स्वयं झूठी बातों का त्याग करके सत्य बातों में निश्चित प्रवृत्त नहीं होता तब तक वह अलौकिक शक्ति परमात्मा की ओर से नहीं मिलती और न दृढ़ोत्साही वह हो सकता है। यावत् इन ईसाई आदि के सामने वैदिक मतानुसार ईश्वर, धर्म आदि को नहीं मानता और और मूर्त्तिपूजा आदि को मानता है तब तक वह जायगा खण्डन करने को आप ही खण्डित हो रहेगा। जैसे कोई किसी को दुर्व्यसन छुड़ाने का उपदेश करता और आप उसी दुर्व्यसन में फंसा है उसका उपदेश कोई भी न मानेगा। इसलिये अशक्यता लिखी थी। नहीं तो पण्डित तो क्या किन्तु एक कोई साधारण उपदेशक भी आर्य समाज का आवे तो इनका कुछ भी बल न चले। इसलिये जो उपाय मैंने उनके निवारण के लिये लिखा है वह अच्छा है, परन्तु ईसाई आदि के सामने जब कभी बातचीत हो तब उसको अति उचित है कि उस समय मूर्त्ति और पुराण का पक्ष छोड़ ही के बोले तभी कृतकारी होगा।..

(दयानन्द सरस्वती)

जोधपुर मारवाड़

(सन्दर्भ ग्रन्थ : ' ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' द्वितीय भाग,पृष्ठ ७४८-७५०, पूर्ण संख्या ७३८, सम्पादक : भगवद्दत्त जी, तृतीय संस्करण १९८१ ई०)

❑❑

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश इस मन्त्र में विद्वानों से पूछे गए पाँच प्रश्न हैं।

प्रजापतिः ऋषिः। प्रष्टा (जिज्ञासुः) देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।।

पुनः प्रश्नानाह।।

विद्वानों से इस प्रकार प्रश्न करें, यह उपदेश किया है।

ओ३म् कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः।
यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतारऽ ऋतुशो यजन्ति।।
(यजु० २३। ५७)

पदार्थः **(कति)** **(अस्य)** **(विष्ठाः)** विशेषेण तिष्ठति यज्ञो यासु ताः **(कति)** **(अक्षराणि)** उदकानि। अक्षरमित्युदकनाम **(निघं० १। १२)** **(कति)** **(होमासः)** दानाऽऽदानानि **(कतिधा)** कति प्रकारैः **(समिद्धः)** ज्ञानादिप्रकाशकाः समिद्रूपाः। अत्र छान्दसो वर्णागमस् तेन धस्य द्वित्वं सम्पन्नम् **(यज्ञस्य)** संयोगादुत्पन्नस्य जगतः **(त्वा)** त्वाम् **(विदथा)** विज्ञानानि **(पृच्छम्)** पृच्छामि **(अत्र)** **(कति)** **(होतारः)** **(ऋतुशः)** ऋतुमृतुं प्रति **(यजन्ति)** संगच्छन्ते।

सपदार्थान्वयः हे विद्वन्! **(अस्य)** **(यज्ञस्य)** संयोगादुत्पन्नस्य जगतः **(कति)** **(विष्ठाः)** विशेषेण तिष्ठति यज्ञो यासु ताः? **(कति)** **(अक्षराणि)** उदकानि? **(कति)** **(होमासः)** दानाऽऽदानानि? **(कतिधा)** कतिप्रकारैः **(समिद्धः)** ज्ञानादि प्रकाशकाः समिद्रूपाः? **(कति)** **(होतारः)** **(ऋतुशः)** ऋतुमृतुंप्रति **(यजन्ति)** संगच्छन्ते? इत्यत्र विषये **(विदथा)** विज्ञानानि **(त्वा)** त्वाम् अहं **(पृच्छम्)** पृच्छामि।।

भाषार्थ : हे विद्वान्! इस **(यज्ञस्य)** संयोग से उत्पन्न जगत् के **(कति)** कितने **(विष्ठाः)** विशिष्ट स्थिति के आधार हैं? **(कति)** कितने **(अक्षराणि)** जल आदि निर्माण के साधन हैं? **(कति)** कितने **(होमासः)** लेन-देन अर्थात् व्यापार हैं? **(कतिधा)** कितने प्रकार के **(समिद्धः)** समिधा के तुल्य ज्ञान आदि के प्रकाशक हैं **(कति)** कितने **(होतारः)** व्यवहार करने वाले **(ऋतुशः)** प्रत्येक ऋतु में **(यजन्ति)** संग करते हैं? यह **(अत्र)** इस विषय में **(विदथा)** विज्ञान को **(त्वा)** तुझसे मैं **(पृच्छम्)** पूछता हूँ।।

भावार्थ : इदं जगत् क्व तिष्ठति? कत्यस्य निर्माण-साधनानि? कति व्यापारयोग्यानि? कतिविधं ज्ञानादिप्रकाशकम्? कति व्यवहर्त्तारः? इति पञ्च-प्रश्नाः, तेषामुत्तराण्युत्तरत्र वेद्यानि।।

भावार्थ : यह जगत् किसमें स्थित है? कितने इसके निर्माण के साधन हैं? कितने व्यापार के योग्य वस्तु हैं? कितने ज्ञान के प्रकाशक हैं? और कितने व्यवहार करने वाले हैं? ये पाँच प्रश्न हैं? इनके उत्तर अगले मन्त्र में समझें।।

(''दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर'' से उद्धृत, व्याख्याता स्व० श्री पं० आचार्य सुदर्शनदेव)

[इस मन्त्र के प्रश्नों के उत्तर अगले अंक में दिये जायेंगे। सम्पादक]

हृदय के अर्थ

(उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर, मो.- 09845058310)

पिछले माह, वेदों और प्राचीन ग्रन्थों में, हमने 'ब्रह्म' शब्द के अर्थ, परमात्मा ही नहीं, अपितु जीवात्मा और अन्य वस्तु (जैसे प्राण, चक्षु आदि) भी पाए। उसी श्रृंखला में आज एक अन्य बहुत सामान्य शब्द के अति विचित्र अर्थ को देखते हैं। यह शब्द है **'हृदय'**। प्रायः सभी जानते हैं कि हृदय का अर्थ वक्षस्थल में स्थित रक्त को पूरे शरीर में संचालित करने वाला अवयव है। परन्तु प्राचीन भाषा में इसके क्या अर्थ थे, यह अत्यन्त रोचक विषय है।

पहले हम हृदय शब्द के निर्वचन को देखते हैं। उणादिसूत्रों के अनुसार हृदय = हृञ् हरणे + दुक् + कयन् प्रत्यय (उणादि. ४/१००), जिसके भाष्य में महर्षि दयानन्द ने लिखा है- **हरति विषयानिति हृदयं मनो वा**, अर्थात् जो विषयों को ग्रहण करता है, वह हृदय कहलाता है। महर्षि ने तो रक्तसंचार-यन्त्र की बात ही नहीं की और हृदय को सीधा मन बता दिया।

अच्छा तो एक दूसरा निर्वचन देखते हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् के एक प्रकरण में कहा गया है-

एष प्रजापतिर्यद्धृदयतमेतद्ब्रह्मैतत् सर्वं तदेतत् त्र्यक्षरँ हृदयमिति। हृ इत्येकमक्षरमभिहरन्त्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद। द इत्यकेमक्षरं ददत्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद। यमित्येकमक्षरमेति स्वर्गं लोकं य एवं वेद।।

बृहदा० ५/३/१।।

अर्थात् यह जो हृदय है, यह प्रजापति है, यह ब्रह्म है, यह सब कुछ है। वह तीन अक्षरों वाला है। पहला अक्षर 'हृ' है क्योंकि यह अभिहरण (हृञ् हरणे से) = लाता है। जो ऐसा जानता है, उसको उसके अपने और अन्य भी (धन-धान्य) लाते हैं। 'द' अक्षर से देने (डुदाञ् दाने से) का ग्रहण है। जो ऐसा जानता है उसको उसके अपने और अन्य भी (धन-धान्य) देते हैं। तीसरा अक्षर 'यम्' है जो कि गत्यार्थक (इण् गतौ से) है। जो ऐसा जानता है, वह स्वर्ग लोक प्राप्त करता है।

इस प्रकार उपनिषद् प्रत्येक अक्षर के अलग-अलग अर्थ करता है। प्रथम इन अर्थों को रक्तयन्त्र में घटाते हैं। उरस्थ हृदय शरीर से गन्दे रक्त का ग्रहण करता है; वह साफ रक्त को अवयवों में देता है; वह रक्त को सब प्रकार से गति प्रदान करता है। यह हृदय की कितनी सुन्दर व्याख्या है!

परन्तु स्वामी जी ने तो हृदय की व्याख्या मन की थी। तो मन के अर्थ में यह कैसे घटता है, सो, मन बाह्य विषयों का ज्ञानेन्द्रियों से ग्रहण करता है, हाथ-पैर आदि कर्मेन्द्रियों को कर्म करने का निर्देश देता है, और संकल्प-विकल्प द्वारा गति करता है। इस प्रकार बृहदारण्यक का निर्वचन मन पर भी लागू होता है। परन्तु उसने हृदय को ब्रह्म कहा है। इसका अर्थ क्या है- यह हम अन्त में देखेंगे।

इस प्रकार हमने ऊपर पाया कि हृदय के दो अर्थ सम्भव हैं- उरस्थ हृदय और शिरस्थ हृदय। इस दूसरे पक्ष में एक और प्रमाण देते हैं-

मनोमयोऽयं पुरुषो भाः सत्यस्तस्मिन्नन्तर्हृदये यथा ब्रीहिर्वा यवो वा। स एष सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति यदिदं किञ्च।।

बृहदा. ५/६/१।।

अर्थात् यह मनोमय पुरुष (जीवात्मा) प्रकाशस्वरूप है, वह सत्य (सत्तावान्) है। वह अन्तर्हृदय में उस प्रकार निवास करता है, जैसे कि कोई चावल अथवा जौ का दाना हो (अर्थात् वह अत्यन्त सूक्ष्म है)। वह यह सब (शरीर) का ईश्वर है, सबका अधिपति है, इन सब पर शासन करता है जो कुछ भी है (उसके शरीर में)।

अब यह तो स्पष्ट ही है कि जीवात्मा मस्तिष्क में निवास करता है, उरस्थ हृदय में नहीं। याज्ञवल्क्य ने भी मनोमय के साथ उसका ग्रहण करके यह संकेत दिया है कि इस सूक्ष्म पुरुष का निवास अन्तःकरण में है, जिसका अपरनाम हृदय है। यहाँ हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि 'मन' से यदा-कदा संकल्प-विकल्पात्मक मन ही नहीं, अपितु अन्तःकरण के चारों भाग- मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार- ग्रहण होते हैं। यहाँ पर प्रतीत होता है कि 'बुद्धि' अर्थ अभिप्रेत है क्योंकि बुद्धि मन पर भी राज करता है। इस बुद्धिपरक प्रयोग के अन्य उदाहरण इस उपनिषद् में प्राप्त होते हैं। वे इस प्रकार हैं-

स यथा सर्वासामपाँ समुद्र एकायतनमेवँ .... सर्वेषाँ संकल्पानां मन एकायतनमेवँ सर्वासां विद्यानाँ हृदयमेकायतनम्...।। बृहदा० २/४/११।।

अर्थात् जिस प्रकार समुद्र सब जलों का अकेला आश्रय है, उसी प्रकार सारे संकल्पों का मन अकेला आयतन है और विद्याओं का हृदय। यहाँ क्योंकि याज्ञवल्क्य मन को पृथक् पढ़ते हैं, इसलिए और क्योंकि बुद्धि में ही सारी विद्याएं समाविष्ट हैं, इसलिए भी स्पष्टतः यहाँ 'हृदय' से 'बुद्धि' ही अभिप्रेत है। अन्यत्र वे कहते हैं-

तम एव यस्यायतनँ हृदयं लोको मनोज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात् सर्वस्यात्मनः परायणँ स वै वेदिता स्याद्याज्ञवल्क्य। वेद वा अहं तं पुरुषँ सर्वस्यात्मनः परायणं यमात्थ य एवायं छायामयः पुरुषः ....।। बृहदा० ३/६/१४।।

विदग्ध शाकल्य शास्त्रार्थ में याज्ञवल्क्य को चुनौती देते हुए कहते हैं, "हे याज्ञवल्क्य! जो उस पुरुष(= जीवात्मा) को जानता है जिसका अन्धकार (शरीर के रूप में) ही आधार है, जिसका हृदय (=बुद्धि) लोक (=ज्ञान-साधन) है, मन ज्योति है (सारी इन्द्रियों को प्रकाशित करने के कारण) जो कि सब अपनत्व (=अहंकार) का आश्रय है, वही सच्चा ज्ञानी होगा (अर्थात् तुम यदि उसे जानते हो, तभी तुम्हें हम परम ज्ञानी समझें।" याज्ञवल्क्य कहते हैं, "जिसको तुमने सब अपनत्व का आश्रय कहा है, उस पुरुष को मैं जानता हूँ। वही यह छायामय पुरुष है (जिसकी झलक शरीर में दिखती है)।" यहाँ पुनः मन का पाठ अलग हुआ है। इसलिए लोक = ज्ञान-साधन बुद्धि ही हो सकती है। यहाँ याज्ञवल्क्य यह भी संकेत दे रहे हैं कि बुद्धि से ही आत्मा जुड़ी होती है और मन आदि बुद्धि से नियन्त्रित हैं। उस बुद्धि में अहंकार भी निकटता से वास करता है, जिससे कि जीवात्मा शरीर से अपनत्व अनुभव करते हैं। इस अर्थ को पोषित करने वाली एक अन्य कण्डिता भी है-

... हृदयं वै ब्रह्मेति... हृदयमेवायतनमाकाशः प्रतिष्ठा स्थितिरित्येनदुपासीत। का स्थितता याज्ञवल्क्य? हृदयमेव सम्राडिति होवाच। हृदयं वे सम्राट् सर्वेषां भूतानामायतनँ। हृदयं वै सम्राट् सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा। हृदये ह्येव सम्राट् सर्वाणि भूतानि प्रतिष्ठितानि भवन्ति। हृदयं वै सम्राट् परमं ब्रह्म। . ..।। ब्रहदा० ४/१/७।।

महर्षि याज्ञवल्क्य और जनक के संवाद में, याज्ञवल्क्य जनक को बताते हैं, "निश्चय ही हृदय ब्रह्म (महत्वपूर्ण) है। हृदय अपना ही आश्रय है। वह आकाश में प्रतिष्ठित है। उसकी स्थिति रूप में उपासना करनी चाहिए।" जनक ने पूछा, "हे याज्ञवल्क्य! उसकी स्थितता क्या है?" याज्ञवल्क्य बोले, "हे सम्राट्! हृदय की स्थितता हृदय ही है। निश्चय ही वह सारे प्राणियों का आश्रय और प्रतिष्ठा है क्योंकि हृदय में ही सब प्राणी प्रतिष्ठित हैं। हे सम्राट! वस्तुतः हृदय परम ब्रह्म है।" जबकि यह वर्णन परमात्मा पर भी घटता है, तथापि वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र व मन- अर्थात् शरीर के अन्य प्रधान अवयवों- के समान वर्णनों के बाद पढ़े जाने से, यहाँ इसका अर्थ बुद्धि ही समीचीन है। तब याज्ञवल्क्य के कथन का अर्थ हुआ- बुद्धि अपना कार्य करने के लिए किसी अन्य अवयव पर आश्रित नहीं है (रक्त आदि के लिए तो

आश्रित है, परन्तु यहाँ उनका सन्दर्भ नहीं है)। वह सूक्ष्म आकाश में स्थित है। जीवात्मा उस के अन्दर स्थित है। बुद्धि सब जीवात्माओं की प्रतिष्ठा है। इसीलिए उसका स्थिति रूप में चिन्तन करना चाहिए।

हृदय के इस नए अर्थ को हम वेदों में भी पाते हैं। नीचे मैं तीन उदाहरण प्रस्तुत कर रही हूँ। पहला उद्धरण अथर्ववेद का यह प्रसिद्ध मन्त्र है-

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः।।
अथर्व० १६/६/५।।

अर्थात् ब्रह्म ने जो ये पाँच इन्द्रियाँ और छठा मन मेरे हृदय में तीक्ष्ण करके रखे हैं, जिनसे जहाँ घोर पाप किए जा सकते हैं, वहीं उनसे केवल हमारे लिए शान्ति का सृजन हो। यहाँ पुनः मन के अलग पढ़े जाने से, स्पष्टतया 'हृदय' से बुद्धि निर्दिष्ट है, जिसमें कि अन्तःकरण के अन्य अवयव भी संयुक्त हैं।

दूसरा उद्धरण यजुर्वेद से है, वो भी एक प्रसिद्ध मन्त्र से'

सुषारसिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते भुशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।। यजु० ३६/६।।

अर्थात् जो मन मनुष्यों को विषयों में बार-बार उसी प्रकार से ले जाता है, जैसे कि एक अच्छा सारथि लगाम द्वारा रथ के घोड़ों को अपने नियन्त्रण में ले जाता है, जो मन हृत् (=हृदय) में स्थित है, जो कभी वृद्ध नहीं होता, जो कि सबसे अधिक तीव्र है, वह मेरा मन सदा कल्याणकारी संकल्प करे। यहाँ भी मन को हृदय, अर्थात् बुद्धि में स्थित बताया गया है।

ऋग्वेद से भी एक उदाहरण देखते हैं-

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो विचरन्त्यु त्वे।।

ऋग्० १०/७१/८।।

अर्थात् बुद्धि की तीक्ष्णताओं में (=के द्वारा) और मन के वेगों में (=के द्वारा) जो वेदज्ञानी समान ज्ञान को प्राप्त करते हैं, वे उस (मूर्ख) को त्याग देते हैं, जिसका ज्ञान जानने योग्य (=उनके जैसा) नहीं होता, क्योंकि ऊहा = तर्क द्वारा ही उस ज्ञान में प्रवेश पाया जाता है। इस प्रकार यहाँ पुनः 'हृत्' (=हृदय) बुद्धि अभिप्रेत है।

यदि उपनिषद् में हृदय का अर्थ बुद्धि लिया गया है, तो फिर उपर्युक्त निर्वचन के क्या अर्थ हुए? सो, बुद्धि भी (हृ) मन के इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान का ग्रहण करती है, (द) मन को कर्मेन्द्रियों के लिए आदेश देती है व उपलब्ध ज्ञान जीवात्मा को देती है, और (यम्) अपनी निश्चयात्मक वृत्ति से चलायमान होती है। इस प्रकार 'हृदयम्' पद के हमने तीन अर्थ अभी तक देखे- रक्तयन्त्र, मन व बुद्धि। अब ऊपर दी हुई बृहदा० ५/३/१ कण्डिका में किस अर्थ का ग्रहण हुआ है, जो उसको प्रजापति कहा गया है? इसके उत्तर के लिए हमें उससे अगली कण्डिका देखनी पड़ेगी-

तद्वै तदेव तदास सत्यमेव। स यो हैतं महद्यक्षं प्रथमजं वेद सत्यं ब्रह्मेति जयतीमांल्लोकान् जित इन्नसावसद्य एवमेतं महद्यक्षं प्रथमजं वेद सत्यं ब्रह्मेति सत्यँ ह्येव ब्रह्म।। बृहदा. ५/४/१।।

वह (प्रजापति) निश्चय से (हृदय) ही है और सत्य रूप है। वह जो इस महान् यक्ष को, प्रथम उत्पन्न होने वाले को, सत्य-रूपी ब्रह्म को जानता है, वह संसार के सभी लोकों को जीत लेता है; और जो इस महान् यक्ष को, प्रथम उत्पन्न होने वाले को, सत्य ब्रह्म को असत् रूप में जानता है, वह पराजित हो जाता है। वस्तुतः सत्य ही ब्रह्म है।

इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त तीनों

शेष पृष्ठ ६ पर

भारत युवा और राजनीति

(धर्मपाल आर्य)

मुझसे कई बार एक प्रश्न पूछा जाता है कि वर्तमान राजनीति के दर्पण में आप भारत और युवा वर्ग का कैसा भविष्य देखते हैं? उपरोक्त प्रश्न से मुझे कुछ समय तक असहजता की अनुभूति जरूर हुई क्योंकि राजनीति में मेरी कभी भी रुचि नहीं रही। पुनरपि एक सामाजिक कार्यकर्ता होने के नाते इस प्रकार के प्रश्नों से आमना-सामना होना भी बहुत स्वाभाविक है। मैं उसका अपवाद नहीं हूँ। अतः मैंने उपरोक्त प्रश्न का उत्तर लेखबद्ध करने का मन बनाया।

बीते कुछ महीनों में देश के विश्वविद्यालयों में जिस तरह के घटनाक्रम हुए, आरक्षण को लेकर जिस प्रकार आन्दोलन हुए, सवर्ण-असवर्ण का प्रकरण उभरकर आया। एस.सी-एस.टी एक्ट पर जिस तरह बवाल मचा, इन सबसे राजनीति और राजनीतिक दलों की नकारात्मकता उजागर हुई है। इन घटनाक्रमों के कारण उत्पन्न अराजकता और अव्यवस्था पर निर्णायक अंकुश लगाने में राजव्यवस्था कहीं न कहीं लाचार ही नजर आई। जब राजनीति किसी बिन्दु पर आकर किंकर्तव्यविमूढ हो जाती है। जब राजनीतिक दल और राजनेता लाचार राजनीति को ही राज-काज का माध्यम बनाते हैं, तो पाठक स्वयं निष्पक्ष और तटस्थ होकर विचार करें कि लाचार राजनीति, लाचार राजनीतिक दल और लाचार राजनेता क्या एक अखण्ड राष्ट्र, एक समृद्ध राष्ट्र, एक सुदृढ राष्ट्र, अन्याय और अव्यवस्था से मुक्त राष्ट्र बना पाएंगे? शायद नहीं। राजनीतिक विवशताएं अथवा दुर्बलताएं राष्ट्र में अस्थिरता का कारण बनती हैं। जब राजनीति अपराधियों की और अपराधों की पनाहगाह बनने लगती है और जब राजनीति दिग्भ्रमित होने लगे, तो अराजकता की आँधी को कोई नहीं रोक सकता। वर्तमान राजनीति पर मैं यदि विस्तार से लिखने लगूँ, तो यह लेख उसके लिए बहुत छोटा पड जायेगा।

राजनीति के दर्पण में भारत के भविष्य को जब मैं देखता हूँ , तो मेरा आकलन बहुत आशाजनक नहीं है। उस (राजनीति) के आईने में युवा-पीढी का भविष्य विडम्बनाग्रस्त दिखाई देता है। युवा पीढ़ी आज जिस दौर से गुजर रही है वह हम सबके लिए चिन्ताजनक है। आज युवा पीढी दुर्व्यसनों के व्यूह में बुरी तरह उलझती जा रही है। राजनीति के नजरिए से तो संस्कृति और सभ्यता भी तथाकथित धर्मनिरपेक्षता की चपेट में आती जा रही है। यदि राजनीति राजधर्म के तहत भारत की, युवावर्ग की, संस्कृति और सभ्यता की वृद्धि नहीं कर सकती, तो कल्पना की जा सकती है कि किस प्रकार के समाज व राष्ट्र की तस्वीर हमारे सामने होगी। युवा किसी भी राष्ट्र की सबसे बडी सम्पत्ति होती है, युवा ही किसी राष्ट्र की सबसे बडी ताकत होती है, युवा ही किसी राष्ट्र की अखण्डता व अस्मिता के आधार होते हैं। युवा ही किसी राष्ट्र की गौरव गाथा के सूत्रधार होते हैं।, युवा ही किसी राष्ट्र के कर्णधार होते हैं, युवा ही राष्ट्र की सर्वाङ्गीण उन्नति के प्रमुख घटक हैं, युवा भारत का भविष्य हैं और युवा ही हमारे राष्ट्र की पुरातन सदातन पावन सांस्कृतिक विरासत के एकमात्र उत्तराधिकारी हैं।

लेकिन बडे दुर्भाग्य की बात है कि सांस्कृतिक विरासत के वारिस युवाओं की चिन्ता न तो राजनीतिक दलों को है और न ही राजनेताओं को। राजनेता और राजनीतिक दल अपने एक ही लक्ष्य पर काम कर रहे हैं कि राजनीति को राष्ट्र व समाज के हित में प्रयोग न करके उसके माध्यम से अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति की जाए। तथाकथित साम्प्रदायिक सद्भाव का नकाब ओढ़कर एक वर्ग को नीचा दिखाओ और दूसरे वर्ग में जाकर बेनकाब हो जाओ। इस प्रकार की राजनीति ने देश को और देश के

युवाओं को अत्यधिक भटकाने का ही कार्य किया है इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं।

राजनीति और राजधर्म को महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश के छठे समुल्लास में बडे सटीक शब्दों में परिभाषित किया है। ऋषिवर लिखते हैं- **''जो-जो नियम राजा प्रजा के** सुखकारक और धर्मयुक्त समझें उन-उन नियमों को पूर्ण विद्वानों की राजसभा बाँधा करे। वेद, मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम नवम अध्याय में और शुक्रनीति तथा विदुर प्रजागर और महाभारत शान्तिपर्व के राजधर्म और आपद्धर्म आदि पुस्तकों में देखकर पूर्ण राजनीति को धारण करके माण्डलिक अथवा सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य करें और यह समझें कि - **'वयं प्रजापतेः प्रजाः अभूम'** अर्थात हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्रजा और परमेश्वर हमारा राजा हम उसके भृत्यवत् हैं। वह कृपा करे अपनी सृष्टि में हमको राज्या- धिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्य न्याय की प्रगति करावे।''

ऋषिवर ने राजनीति की जो तस्वीर प्रस्तुत की, वो राष्ट्र के लिए, राष्ट्र के युवाओं के लिए, संस्कृति के लिए, सभ्यता के लिए, समग्र उत्थान के लिए वरदान है। ऋषिवर ने राजनीति में उन सिद्धान्तों के होने की आवश्यकता का उल्लेख किया है, जो राजा के लिए भी और प्रजा के लिए भी सुखकारक हों, तथा उस राजनीति को परिभाषित किया जो राजधर्म अथवा जो राजनीति कभी हमारे महान राजाओं- महाराजाओं द्वारा राष्ट्र व समाज के हित में प्रयोग में लायी जाती थी। ऋषि जी उस राजनीति की चर्चा करते हैं जो राष्ट्र की नितान्त आवश्यकता है और महर्षि दयानन्द जी हमें उस राजनीति से हमें अवगत कराते है जिस राजनीति के दर्पण में राष्ट्र, समाज का, संस्कृति का, सभ्यता का, युवाओं का, और मानवता का भी भविष्य सुरक्षित है। ऋषिवर का राजनीतिक चिन्तन वेद राजायण, महाभारत आादि ग्रन्थों पर आधारित है। वेद में अनेक स्थलों पर स्वच्छ राजनीति और धार्मिक तथा कल्याण करने वाले राजाओं के होने की कामना की है।

वेद में आता है-

'रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः।'

''आ राष्ट्रे राजन्य शूर इषव्योऽतिव्याधि महारथो जायताम्।'' अर्थात् विजयी राजा हमारे लिए कल्याणकारी हो, हे प्रभो। हमारे राष्ट्र में राजा अत्यन्त बलशाली तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले हों। हे प्रजाजनो! आप कभी चोरों द्वारा शासित न हों तथा कभी भी पाप अथवा हिंसा करने वालों का आप पर शासन न हो। महाभारत में राजधर्म के विषय में बड़े विस्तार से उल्लेख मिलता है। महर्षि वेदव्यास लिखते हैं-

संविभज्य यदा भुङ्क्ते नामात्यानवमन्यते।
निहन्ति बलिनं दृप्तं सः राज्ञो धर्म उच्यते।।
त्रायते हि यदा सर्वं वाचा कायेन कर्मणा।
पुत्रस्यापि न मृष्येच्च सः राज्ञो धर्म उच्यते।।
यदा रक्षति राष्ट्राणि यदा दस्यूनपोहति।
यदा जयति संग्रामे सः राज्ञो धर्म उच्यते।।
कृपणानाथवृद्धानां यदाश्रु परिमार्जति।
हर्षं संजनयन् नृणां सः राज्ञो धर्म उच्यते।।
विवर्धयति मित्राणि तथारींश्च विकर्षति।
सम्पूजयति साधूंश्च सः राज्ञो धर्म उच्यते।।
सत्यं पालयति प्रीत्या नित्यं भूमिं प्रयच्छति।
पूजयेदतिथीन् भृत्यान् सः राज्ञो धर्म उच्यते।।

अर्थात् संसाधनों का समान रूप से बंटवारा, अमात्यों के सत्परामर्श की जब अवहेलना न की जाती हो, बलवान शत्रु का सामना करने का साहस हो, जब वाणी, तन और कर्म से सब की रक्षा की जाती हो, अपराध होने पर पुत्र को भी क्षमा न किया जाए, जब राष्ट्र की रक्षा की जाती हो, शत्रुओं को पराजित किया जाता हो, संग्राम में विजय प्राप्त होती हो, जब गरीब अनाथों के आँसू पौंछे जाते हों, प्राणीमात्र में हर्ष पैदा किया जाता हो, प्रीतिपूर्वक सत्य का पालन किया जाता हो, भूमि का दान दिया जाता हो, साधुओं को सम्मान होता हो, मित्र राष्टों की उन्नति तथा शत्रु राष्टों की अवनति में तत्पर हो और सेवक व अतिथियों का सत्कार होता हो उसे राजधर्म अथवा राष्टनीति (राजनीति) कहा जाता है। महर्षि महाभारत व चाणक्यादि द्वारा निर्धारित राजनीति के सिद्धान्तों के प्रबल पक्षधर रहे

हैं। भारतवर्ष और उसके युवाओं के भविष्य पर जब मैं वर्तमान में विडम्बनाओं और विषमताओं की खिंची हुई लकीरों को आज की राजनीति के दर्पण पर देखता हूँ, तो मुझे भारतवर्ष के युवाओं के, संस्कृति और सभ्यता के और सनातन वैदिक परम्परा के भविष्य पर विडम्बनाओं तथा विषमताओं की अमिट लकीरें दिखाई देती हैं। क्योंकि हमारे राजनीतिक दलों को भारत के अथवा उसके युवाओं के भविष्य की नहीं, अपितु अपने राजनीतिक भविष्य की चिन्ता अहर्निश सताती है।

यदि ऐसा नहीं होता, तो मैं इस देश की राजनीति और राजनेताओं को देश में अवैध रुप से घुसपैठ कर बसने वाले रोहिंग्या मुसलमानों के मुद्दे पर बंटते नहीं देखता। यदि ऐसा नहीं होता, तो कश्मीर में सेना पर गद्दारों के इशारों पर पत्थरबाजी करने वाले पत्थरबाजों के मुद्दे पर इस देश के राजनीतिज्ञों और राजनीति को बँटते नहीं देखता। यदि ऐसा नहीं होता, तो राममन्दिर के निर्माण पर राजनीतिक नाटकबाजी होते हुए नहीं देखता और न ही राजनीतिज्ञों को बँटते देखता। यदि ऐसा नहीं होता, तो देशभक्ति और देशभक्तों पर देशद्रोह और देशद्रोहियों को हावी होते नहीं देखता। यदि देश की राजनीति के दर्पण में विडम्बनाओं और विषमताओं की लकीरें नहीं होतीं, तो मुझे उसमें भारत का तथा उसके युवाओं का भविष्य देखने में अत्यन्त प्रसन्नता होती, यदि ऐसा न होता तो राजनीति आज पतन के सबसे निचले पायदान पर न पड़ी होती। इसलिए मेरी समझ में नहीं आ रहा कि मैं धुंधली और विकृति लकीरों वाली राजनीति के दर्पण में अपने युवाओं का उज्ज्वल भविष्य कैसे देखूँ?

यदि दर्पण साफ नहीं होगा, तो उसमें आकृति भी स्वच्छ नहीं आयेगी। अतः आवश्यकता है उस दर्पण को साफ किया जाए। लकीर खिंचे दर्पण में सूरत देखना बुद्धिमता नहीं है। वर्तमान राजनीति के दर्पण में इतने विकार हैं कि यदि उनको समय रहते हुए साफ नहीं किया गया तो यह अनुमान भी लगााना कठिन होगा कि उसकी कीमत किसको कितनी चुकानी पड़े। इसलिए भारतवर्ष का और युवावर्ग का उज्ज्वल भविष्य विकृत हुई राजनीति के दर्पण में नहीं, अपितु महर्षि देव दयानन्द द्वारा वेद, रामायण, महाभारत आदि द्वारा परिभाषित स्वच्छ राजनीति के दर्पण में भारत व युवाओं के भविष्य को देखें।

❑❑

(पृष्ठ ६ का शेष)

ही अर्थ यहाँ निष्फल हैं, और प्रजापति परमात्मा को छोड़ और कुछ नहीं हो सकता। और क्योंकि प्रजापति को हृदय कहा गया है, सो हृदय का अर्थ परमात्मा निश्चित हुआ। तब फिर ५/३/१ कण्डिका में हृदय शब्द का पुनः अवलोकन करना पड़ेगा। वहाँ जो 'हृदयम्' का निर्वचन दिया गया है, क्या वह परमात्मा पर भी लागू होता है? हां, इस प्रकार- परमात्मा (हृ) प्रलयकाल में प्रकृति के सभी कार्यों और जीवात्माओं की चेतनता का हरण कर लेता है, (द) सृष्टिकाल में वह सब कार्यों को बनाकर जीवात्माओं को देता है, और (यम्) सर्वदा ब्रह्माण्ड को गतिशील रखता है। कितनी सुन्दरता से एक ही विस्तृत वर्णन चार अर्थों में घट गया।

जब हम किसी भी शब्द के मौलिक अर्थ, उसके यौगिक अर्थ को देखते हैं, तो पाते हैं कि वह अभिप्रेत पदार्थ के गुण, कर्म या स्वभाव का वर्णन करता है। क्योंकि अनेकों वस्तुओं के समान गुण, कर्म, स्वभाव होते हैं, इसलिए एक शब्द अनेकों पदार्थों का नाम हो सकता है। प्राचीन ग्रन्थों में इस समानता का लाभ उठाकर, अनेक बार श्लेषालंकार भी प्रस्तुत किया जाता था। जो हमने ऊपर दो या तीन अर्थ एक ही स्थान पर सम्भव देखे, वे इसी कारण से हैं। एक वस्तु का सन्दर्भ होते हुए भी, ये ग्रन्थ उसके समान वस्तुओं पर भी ध्यान आकर्षित करना चाहते थे। उस समय के ऋषियों को इतने अर्थों को अपने मस्तिष्क में रखने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। कालान्तर में, हमारी धारणा व चिन्तन शक्ति कम हो गई। उसके साथ-साथ इन ग्रन्थों के अर्थ भी हमारे लिए संकीर्ण हो गए...।

❑❑

इतिहासकार की कलाकारी (4)

(राजेशार्य आट्टा, मो0ः-09991291318)

प्रिय पाठकवृन्द! हमारे देश में एक ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग है, जो मतनिरपेक्ष देश की वर्तमान परिस्थितियों में हिन्दू-मुस्लिम में सामञ्जस्य बैठाने के लिए भारत के इतिहास को बदलने का आग्रह रखता है। यह वर्ग भारत के मुसलमानों को विदेशी (अरबी) वेशभूषा, आचार-विचार, नाम, तीज-त्यौहार रखने की स्वतंत्रता देने का पक्षपाती है। अलगाववाद को बढावा देकर भी यह समरसता की बात करता है और इसके लिए हिन्दुओं की परम्पराओं, महापुरुषों व इतिहास पर प्रहार करने को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बताता है। जबकि दूसरा वर्ग यह कहता है कि दर्पण तोड़ने से चेहरे का दाग नहीं मिटेगा। चेहरे की सुन्दरता के लिए दाग पोंछने की आवश्यकता है, दर्पण तोड़ने की नहीं। सामाजिक समरसता के लिए इस बात का प्रचार करने की आवश्यकता है कि सभी (भारतीय) मतों के पूर्वज भारतीय (हिन्दू) थे, जिन्होंने परिस्थितिवश अपनी पूजा-पद्धति बदली थी और जिनका इतिहास हमें पढ़ाया जाता है, वे कासिम, गजनवी, बाबर आदि मुस्लिम विदेशी हमलावर थे। उनके साथ भारत के वर्तमान मुस्लिमों का कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः उनके द्वारा किये गये अत्याचारों पर भारत के मुस्लिमों को न तो गौरवान्वित होना चाहिए और न शर्मिन्दा। उन्हें तो अपने हिन्दू पूर्वजों, उनके देश, उनकी संस्कृति व उनके इतिहास पर गर्व करना चाहिए। अरबी सभ्यता तो उनके पूर्वजों ने किसी दबाव में अपनाई थी। अब स्वतंत्र देश में विदेशी क्यों बनें?

तत्कालीन हिन्दुओं ने मुस्लिम बनने वाले अपने भाइयों के प्रति जो उपेक्षा भाव दिखाया, उसके कारण यदि हिन्दू घृणा का पात्र हो सकता है, तो उनका धर्म छीनने वाले आदरणीय कैसे हो गये? फिर आक्रान्ताओं के पापों (जिन्हें वे 'गाजी' बनने के लिए शान का कार्य मानते थे) को छिपाने के लिए कोई इतिहास की हत्या क्यों करे? जबकि हजरत सैयद मोहम्मद हाशमी मियां भी खुली घोषणा करते हों- "यह बात बिल्कुल सत्य है कि भारत का कोई भी मुसलमान बाबर की संतान नहीं है। न हम बाबर और अकबर की संतान हैं और न शाहजहाँ, हुमायूं की। हम सन्तान हैं, ख्वाजा गरीब नवाज की, फकीरों की, दरवेशों की और सूफी संतों की। उन्होंने हमें आगे बढ़ाया और हमारी आत्मा की शुद्धि की। अगर किसी को बाबर की संतान देखने का शौक हो तो वे काबुल जाएं, शायद कुछ बची हुई बाबर की संतानें वहाँ मिल जाएं।"

किसी के बहकावे में आकर बाबर से सम्बन्ध जोड़ने वाले भारतीय मुसलमानों को यह भी याद रखना चाहिए कि बाबर मध्य एशिया का (तुर्क) था। उसने पहले अफगानिस्तान जीता, बाद में भारत आया। बाबर की कब्र काबुल में है। भारत का एक प्रतिनिधि मण्डल १९६९ ई० में अफगानिस्तान गया था। उसमें सुप्रसिद्ध विचारक, अफगानिस्तान नीति के विशेषज्ञ डॉ० वेद-प्रताप वैदिक भी थे। वे बाबर की कब्र देखने गए। अफगानी नेता से पूछा- बाबर की कब्र की ऐसी दुरवस्था क्यों? अफगान नेता का उत्तर था- बाबर का हमारा क्या सम्बन्ध? बाबर एक विदेशी हमलावर था, उसने हमारे ऊपर आक्रमण किया, हमें गुलाम बनाया। वह मुसलमान था (हम भी मुसलमान हैं), इसीलिए यह कब्र हमने गिरायी नहीं। परन्तु जिस दिन गिरेगी, उस समय हरेक अफगानी को आनन्द होगा। बाबर हमारा शत्रु था, यह बोलने वाले श्री बबरक करमाल १९८१ ई० में अफगान के प्रधानमंत्री बने।

जबकि भारत के भावी (प्रथम) प्रधानमंत्री ने १९४४ ई० में उसी बाबर को आकर्षक व्यक्तित्व का धनी, नयी जागृति का बादशाह, कला और साहित्य का शौकीन लिखकर हिन्दुओं के सिर कटवाकर मीनारें बनवाने वाले क्रूर व्यक्ति का स्वरूप ही बदल दिया। फिर तो भारत के लेखक उसी तर्ज पर लिखते चले गये। उसी परम्परा के वाहक इतिहासकार असगर अली ने आगे कहा- "हिन्दू-मुसिलम राजाओं की लड़ाई राजनैतिक सत्ता पर कब्जा करने की लड़ाइयाँ मात्र होती थीं, इन्हें हिन्दू-मुस्लिम के रूप में नहीं देखना चाहिए। उदाहरण के तौर पर कहा जा सकता है कि अकबर ने अपनी सेना का नेतृत्व हिन्दू राजा मनसिंह को दिया था और उधर राणा प्रताप ने अपनी फौज का नेतृत्व हाकिम खान सूर को दिया था। हाकिम खान सूर जब तक जिन्दा रहा, उसने तब तक हल्दी घाटी की रक्षा की थी। उसकी मौत के बाद ही मुगल फौज हल्दी घाटी में घुस सकी थी। औरंगजेब की सेना का नेतृत्व राजपूत शासक जयसिंह कर रहा था और शिवाजी का सचिव था- मौलवी हैदी अली खान। फिर भी हमारी इतिहास की पाठ्य पुस्तकें कह रही हैं- यह हिन्दु-मुस्लिम की लड़ाई है। दरअसल इस लड़ाई के पीछे यह कुचक्री राजनैतिक बदनीयत रही है कि हिन्दू-मुस्लिम समुदायों के बीच फूट की दीवार खड़ी कर देना।"

समीक्षा- यह तो हम भी मानते हैं कि भारत में मुस्लिम काल राजनैतिक संघर्ष का काल था, जिसमें एक ओर बर्बर सभ्यता के विदेशी आक्रमणकारी भारत के धन, धर्म और धरती को हड़पने के लिए प्रयासरत थे, तो दूसरी ओर हमारे पूर्वज इन्हें बचाने के लिए संघर्ष कर रहे थे, अपना बलिदान दे रहे थे। इतिहासकार ने इतने लम्बे- चौड़े इतिहास में से मात्र दो उदाहरण लिखकर कह दिया यह हिन्दू-मुस्लिम की लड़ाई नहीं थी। यह सत्य है कि सभी मुस्लिमों ने भारत का राज्य पाने के लिए एक-दूसरे का खानदान मिटाया और भाई-भतीजों का बेरहमी से खून बहाया, पर यह भी सत्य है कि वे हिन्दू राजाओं से लड़ने के लिए इस्लाम के नाम पर एक भी हो गये थे और जीतने के बाद उन्होंने हिन्दुओं को काफिर कहकर काटा था, नगरों का नाम बदला था, पकड़ी गई औरतों का धर्म परिवर्तन किया था।

बाकी की तो बात छोड़ो, हम तो सबसे महान मुगल बादशाह अकबर की बात करते हैं, चित्तौड़ दुर्ग को जीतने के बाद उसने २६ फरवरी, १५६८ को ३०००० लोगों को कत्ल करवाया था। हल्दी घाटी की लड़ाई में अकबर का इतिहासकार अल्बदायूनी भी गया था। उसने लिखा है- ''राणा प्रताप के राजपूतों के साथ मानसिंह के राजपूत (अकबर की तरफ से) लड़ रहे थे, तो मैंने प्रमुख सैन्य रक्षक आसफखान से पूछा कि ऐसी अवस्था में हम अपने और शत्रु के राजपूतों की पहचान कैसे कर सकते हैं? उसने उत्तर दिया- 'तुम तो तीर चलाते जाओ, चाहे जिस पक्ष के आदमी मारे जावें, इस्लाम को तो उससे लाभ ही होगा।' इसलिए हम तीर चलाते रहे. ... और मुझे वह पुण्य मिला, जो काफिरों के साथ लड़ने वालों को मिलता है।।"

इसी युद्ध में राणा प्रताप का एक हाथी रामप्रसाद भी लड़ रहा था। उसे बन्दी बनाकर अकबर के पास (अजमेर) भेजा गया, तो अकबर ने उसका भी नाम बदलकर 'पीर प्रसाद' रख दिया।

१५६७ ई० में थानेसर (कुरुक्षेत्र) में चढ़ावे के बंटवारे को लेकर साधुओं के दो गुटों में विवाद हो रहा था। अकबर वहाँ गया, तो उन्होंने उससे झगड़ा निपटाने का निवेदन किया। अकबर ने दोनों गुटों को हथियार देकर लड़ाया। कमजोरों की सहायता के लिए अपने सैनिक लगा दिये। लगभग ८०० साधु कट कर मर गये। (अकबरनामा जिल्द २, पृ० ३६१)

इसी उदार बादशाह अकबर ने १५८३ ई० में हिन्दू तीर्थ प्रयागराज का नाम इलाहाबाद रखा था। राजा भारमल की बेटी मानमती (हरखाबाई) को अकबर ने मरियम उज्जमानी बना दिया था। गोंडवाना की वीरांगना रानी दुर्गावती अकबर की सेना से लड़ती हुई अन्त में आत्महत्या कर गई, अन्यथा उसे भी उसकी बहन कमलावती व पुत्रवधु की तरह अकबर के हरम में धकेल दिया जाता (१५६४ ई०)।

मालवा को तबाह कर आधम खाँ ने(१५६१ई०) लूट के माल के साथ सैकड़ों औरतें भी अकबर के पास भेजी थीं, तो अकबर को पता चला कि आधम खाँ ने लूट का बहुत सा माल स्वयं हजम कर लिया है। इसका दण्ड देने के लिए अकबर ने उसको छत से गिराकर मरवा दिया।

अकबर ने अपने अधीनस्थ बूँदी के राव भोज पर दबाव डाला कि वह अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करे। इस पर राव भोज ने बिना सगाई किए ही कह दिया कि उसकी सगाई तो कल्ला राठौड़ से हो चुकी है। जब अकबर ने कल्ला राठौड़ से पूछा, तो उसने भी हिन्दुत्व के गौरव की रक्षा के लिए हाँ भर दी। तब अकबर ने उसे कहा कि वह सगाई छोड़ दे, परन्तु कल्ला ने स्पष्ट मना कर दिया और तुरन्त जाकर राव भोज की राजकन्या से विवाह कर लिया। इससे अकबर बहुत नाराज हुआ और उसने शाहबाज खाँ को सिवाणे के दुर्ग पर चढ़ाई करने भेजा, जहाँ कल्ला राठौड़ वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया।

यह ठीक है कि अकबर की सेना में मानसिंह जैसे हिन्दू हिन्दुओं के विरुद्ध लड़ रहे थे, पर यह भी सत्य है कि विदेशियों के विरुद्ध हमारा संघर्ष अकबर (हल्दी-घाटी १५७६ ई०) से सैकड़ों वर्ष पूर्व (७१२ ई०) से लड़ा जा रहा था। अकबर के बाप-दादा (हुमायूँ-बाबर) को भारत पर आक्रमण करने के लिए बुलाने वाले दौलत खाँ लोदी (पंजाब) व आलम खां (दिल्ली सुल्तान इब्राहीम लोदी का चाचा) मुसलमान थे। कोई हिन्दू बाबर के साथ नहीं था। इससे पूर्व भी लोदी, सैयद, तुगलक, खिलजी, दास व मुहम्मद गौरी के साथ कोई हिन्दू सेनापति नहीं था। जबकि इन सबको हिन्दुओं से टक्कर लेनी पड़ी।

इब्नबतूता लिखता है- ''बादशाह मुहम्मद तुगलक (१३२५-५१) के उच्च पदस्थ भृत्य, सभासद, मंत्री, काजी और जामाता सब विदेशी ही हैं।" शाहजहाँ के अन्तिम समय (१६५६ ई०) भारत पहुँचा फ्रांसी बर्नियर हमें बतलाता है कि इस बादशाह के राज्य में लग्गभग सभी महत्वपूर्ण पदवियाँ मुगल जाति के व्यक्तियों, कुछ ईरानियों और कुछ अरबवासियों के पास थीं।'' मुहम्मद गौरी से लेकर बहादुरशाह जफर (१८५७) तक के मुस्लिम काल में केवल एक खुसरोशाह ही भारतीय मुस्लिम शासक हुआ। उसके विषय में इब्नबतूता लिखता है- ''वह मलिक खुसरो खाँ (हसन) वास्तव में हिन्दू था और हिन्दुओं का बहुत पक्ष किया करता था।.... खुसरो मलिक ने सम्राट होकर हिन्दुओं को बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त करना प्रारम्भ कर दिया और गोवध के विरुद्ध समस्त देश में आदेश निकाल दिया। ग्यासुद्दीन तुगलक ने विद्रोह कर दिया। खुसरो लड़ता हुआ भाग गया। पकड़े जाने पर उसका सिर काट दिया गया। वह लगभग ५ मास ही शासन कर पाया (१३२० ई०)।''

इसी तरह दिल्ली सल्तनत में प्रधानमंत्री या उच्च पदों पर रहने वाला एकमात्र भारतीय मुसलमान इमादुल मुल्क रैहन (रायहन) था। वह कुछ महीने (१२५३ ई०) नासिरुद्दीन महमूद का प्रधानमंत्री रहा। उसने राज्य के महत्वपूर्ण पदों पर अपने उम्मीदवारों को नियुक्त करवा दिया। डॉ० आशीर्वादी लाल ने लिखा है- "उसे धर्मच्युत हिन्दू, शक्ति हड़पने वाला, षड़यंत्रकारी आदि नामों से पुकारा गया है। किन्तु सत्य यह है कि वह

उतना ही भला मुसलमान था, जितना कि कोई तुर्क। वह न तो आततायी लुटेरा था और न गुण्डा। वह कुशल राजनीतिज्ञ था।.... विदेशी तुर्क तथा उसके (बलबन के) साथी भारतीय मुसलमानों के भी वैसे ही शत्रु थे, जैसे कि हिन्दुओं के। वे यह नहीं सहन कर सकते थे कि कोई भारतीय मुसलमान राज्य के महत्वपूर्ण पद पर पहुँच सके। तुर्क अमीरों ने बलबन के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। सुल्तान नासिरुद्दीन झुक गया। रायहन प्रधानमंत्री पद से हटा दिया गया (कुछ समय बाद उसकी हत्या कर दी गई)।"

मुगल काल में उच्च मनसबदारी पद विदेशी मुसलमानों को ही दिये जाते थे। अकबर की मृत्यु के समय कुल ८ बड़े मनसबदार थे, जिनमें सात मुस्लिम थे और एक (मानसिंह) हिन्दू था। जहांगीर के काल में १३ बड़े मनसबदार थे, जिनमें कोई हिन्दू नहीं था। शाहजहाँ के काल में १८ बड़े मनसबदार थे, जिनमें केवल एक जसवंत सिंह हिन्दू था। फिर कैसे कहें कि आक्रमणकारी मुस्लिमों की हिन्दुओं के साथ हुई लड़ाइयों में राजनीति ही थी, मजहबी द्वेष नहीं। हाँ, कुछ हिन्दुओं द्वारा अकबर काल से उनका सहयोग करने का कारण यह था कि यहाँ तक आते-आते हिन्दू स्वाभिमानियों की सन्तानें संघर्ष से कतराने लगी थीं। अतः परिस्थितिवश उनमें से बहुतों ने सुविधाजनक रास्ता चुन लिया। राज्य के योग्य न होने पर भी उसके लालच में कइयों ने अपनों से द्रोह कर अकबर की गुलामी का पट्टा अपने गले में डाल लिया। मानसिंह के खानदान को मुगलों से जो मान-सम्मान मिला था, उसका कारण यही था कि ये ही पहले राजपूत थे जिन्होंने अपनी बेटी (भारमल की पुत्री) अकबर को ब्याह कर उसे मान्यता प्रदान की थी। उन्होंने ही बाद वालों के लिए बेशरम होने का रास्ता खोला था। कल तक जो जोधपुर का राव मालदेव शेरशाह सूरी से टक्कर ले रहा था, आज उसी का बेटा उदयसिंह (मोटा राजा) अपने भाई चन्द्रसेन से राज्य हथियाने के लिए अपनी बेटी मानीबाई (जोधाबाई) को जहाँगीर की पत्नी बनाने में भी नहीं लजाया। यह स्वार्थ आदमी को इतना अन्धा बना देता है कि जिस अकबर ने चित्तौड़ में कत्ले आम मचाया, सैकड़ों वीरांगनाओं का जौहर हुआ, हजारों वीर बलिदान हुए। फिर चित्तौड़ के राजकुमार जगमाल सागर आदि राणा प्रताप से द्रोह कर उसी अकबर के चरण चाटने लगे।

हा स्वार्थ तेरी जय! अरे तू क्या करा सकता नहीं।

जहाँ तक हकीम खाँ सूर की बात है, वह शेरशाह सूरी का वंशज था। वह अफगान था और अकबर तुर्क था। वैसे भी अकबर बाबर का वंशज था और बाबर ने अफगानिस्तान पर भी आक्रमण किया था। अतः अफगानिस्तान वाले मुस्लिम भी बाबर से घृणा करते थे। वैसे भी शेरशाह सूरी ने हुमायूं को भारत से भगाया था, पर बाद में हुमायूँ ने सूर वंश से सत्ता हथिया ली। इस कारण हकीम खाँ सूर का मुगलों से घृणा करना स्वाभाविक हो गया। राणा उदयसिंह के अंतिम सम

य में वह मेवाड़ की सेना में सम्मिलित हुआ और हल्दी घाटी युद्ध के समय प्रमुख सेनापतियों में उसकी गिनती थी। आठ सौ अफगान घुड़सवारों के साथ वह अग्रिम मोर्चे पर था। हल्दी घाटी से निकलकर इसने तेज गति से मुगलों पर आक्रमण किया। इससे मुगल सेना के अग्रिम मोर्चे में भगदड़ मच गई। युद्ध में जब राणा प्रताप चारों ओर से घिर गये, तो हकीम खाँ सैयदों से लड़ना छोड़ महाराणा के बचाव के लिए आ गये। महाराणा को सुरक्षित निकालने के बाद झाला मान के साथ मिलकर हकीम खाँ ने वीरता से मुगल सेना से टक्कर लेते हुए वीरगति पाई। यदि उसे राज्य ही चाहिए होता, तो वह भी आमेर जोधपुर, मेवाड़ आदि के राजकुमारों की तरह अकबर के चरण दबाता। पर स्वाभिमानी को स्वाभिमानी राणा की प्रीत पसन्द थी, गुलामी का पट्टा गले में डालना स्वीकार नहीं था।

राणा सांगा के समय भी ऐसा ही वीर था- हसन खाँ मेवाती। तुर्कों को भारत से बाहर निकालने के लिए संगठित हुए अफगानों ने अलवर के शासक हसन खाँ मेवाती के नेतृत्व में राणा सांगा से प्रार्थना की। उन्होंने महाराणा को अपना स्वामी माना और उनके जागीरदार बनकर अपने अपने इलाकों पर शासन करने की प्रतिज्ञा की।

बाबर को राणा सांगा से टक्कर लेनी थी। अतः उसने इसलाम के नाम पर हसन खाँ मेवाती को अपने पक्ष में करने के लिए पानीपत की लड़ाई में पकड़े गये उसके पुत्र नाहर खाँ को भी मुक्त कर दिया। मुहम्मद जैतून और तातार खाँ सारंगखानी बाबर की तरफ चले गये, पर हसन खाँ नहीं गया, तो क्रोधित हुए बाबर ने मेवात में लूटमार करवा दी, बहुत से लोगों को कैद कर लिया, फिर भी उसे अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। हसन खाँ मेवाती अपने १२००० सैनिकों के साथ राणा सांगा के पक्ष में लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हो गया। बाबर ने इसे 'काफिर' लिखा है। खानवा के इस युद्ध के विषय में बाबर लिखता है- "हमारा प्रत्येक सैनिक इस्लाम के नाम पर काफिरों की हत्या कर रहा था।"

और विजय के बाद लिखा-

इस्लामों के लिए मैंने धूनी रमाई थी,
काफिरों से लड़ने की मुझे धुन समाई थी।
फतह पाऊँगा या शहीद हो जाऊँगा,
किसी ने कहा था कि मैं गाजी हो जाऊँगा।

इतना साफ लिखा होने पर भी कोई इतिहासकार यह कहे कि यह तो केवल राज्य-प्राप्ति की लड़ाई थी, तो कितना हास्यास्पद लगता है। वास्तव में उनका मजहब व राजनीति साथ-साथ चले हैं। औरंगजेब के काल में शिवाजी छत्रसाल, राजसिंह, गुरु गोविन्दसिंह व जाट वीरों ने मुगल शक्ति को कुचल दिया। फलस्वरूप उत्तर भारत में हिन्दुओं (मराठों) का वर्चस्व हो गया। उसे सहन न करते हुए रुहेलखण्ड के नजीबुद्दौला व पंजाब के शाहनवाजखाँ आदि ने अफगान शासक अहमदशाह अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने के लिए बुलाया। पानीपत की तीसरी लड़ाई से पूर्व (१७६१ ई०) नजीबुद्दौला को भी मजहब के नाम पर विदेशी हमलावर के साथ मिला लिया। 'मेरा ईमान मेरा हिन्दुस्तान' कहने वाले इब्राहीम गार्दी जैसे तो विरले ही होते हैं, जो मजहबी संकीर्णता को त्यागकर देश हित के लिए अपना बलिदान देते हैं। मराठों की पराजय के बाद कत्ले आम मचाने वाले दुर्रानी सिपाही (प्रत्येक) सौ- दो सौ कैदियों को यह कहते हुए काट रहे थे कि जब मैं देश से चला था तो मेरे माँ, बाप, बहन तथा स्त्री ने कहा था कि तुम हमारी खातिर जितने भी काफिरों को काट सको, उतनों को काट डालना।" हमने इस धर्म युद्ध में विजय पाई है, अतः हमारा धर्म यही है कि हम काफिरों को काटें, जिससे हमारे सम्बन्धियों को पुण्य (सबाब) प्राप्त हो।"

फिर कोई इतिहासकार कैसे कह सकता है कि इन लड़ाइयों को हिन्दु'मुसिलम की लड़ाई कह कर हिन्दू-मुसिलम समुदायों के बीच फूट की दीवारें खड़ी करने की कुचक्री राजनीति है। सोचिये, ये दीवारें किसने खड़ी कीं, जब अल-बिरुनी लिखता है-"महमूद गजनवी के आक्रमणों के कारण हिन्दू धूल कणों के समान बिखर गए।... उनके मनों में मुस्लिमों के प्रति अब तक घृणा के भाव हैं।"

ये घृणा के भाव फैलाने का दोष कट्टर मजहबी लेखकों को ही नहीं दिया जा सकता, क्योंकि बाबरनामा, जहाँगीरनामा जैसे कई ग्रन्थ तो स्वयं इन्हीं शासकों द्वारा लिखे हुए माने जाते हैं, जिनमें हिन्दुओं के प्रति घृणा व्यक्त की गई है।

(क्रमशः)

❑❑

दलित मुस्लिम एकता की जमीनी सच्चाई

(डॉ0 विवेक आर्य, मो0ः-08076985517)

पाकिस्तान से समाचार मिला। सरकार द्वारा विभिन्न संस्थानों में नौकरियों हेतु विज्ञापन निकाला गया है। उन विज्ञापनों मे सफाई कर्मचारी का स्थान आरक्षित किया गया है। आप अचंभित हो रहे होंगे कि पाकिस्तान तो इस्लामिक मुल्क है। उसमें आरक्षण का क्या काम! क्यूंकि आपने तो सुना होगा कि इस्लाम में कोई भेदभाव नहीं है। पर जनाब आपको जानकर अचरज होगा कि पाकिस्तान में भी आरक्षण लागू है। इस आरक्षण का लाभ केवल और केवल वहाँ के गैर मुसलमानों को मिलता है। जिसमें दलित हिन्दू, ईसाई समुदाय के लोग आते हैं। इन सभी के लिए पाकिस्तान की सरकार ने यह नियम बनाया है कि सफाई करने, शौचालय साफ करने, झाड़ू लगाने जैसे कार्य उनके मुल्क में कोई मुसलमान नहीं करेगा। यह काम केवल और केवल गैर मुसलमानों से कराया जायेगा। अब पाकिस्तान में रहने वाले अधिकांश निर्धन हिन्दू या तो दलित हैं अथवा धर्मांतरित वाल्मीकि समुदाय से सम्बंधित ईसाई हैं। जो १९४७ में पाकिस्तान में रुक गए थे। अब पाठक सोच रहे होंगे कि वे क्यों रुके। उन्हें तो डॉ० बाबा साहिब अम्बेडकर का कहना मानकर भारत आ जाना चाहिए था। अब यह इतिहास आपको जानना बेहद आवश्यक है।

भारत के विभाजन के समय दलित समाज के दो अहम नेता थे डॉ० बाबा साहिब अम्बेडकर और दूसरे थे जोगेंद्र नाथ मंडल। जोगेंद्र नाथ मंडल ने बाबा साहेब का तब साथ दिया था, जब १९४५-४६ में संविधान-निर्माण समिति के लिए चुनाव में बाबासाहेब बंबई से चुनाव हार गए थे, तब जोगेंद्र नाथ मंडल ने उन्होंने अविभाजित बंगाल से जितवाया था।

दलित-मुस्लिम गठजोड़ और जय भीम-जय भीम का नारा देने वाले आपको कभी जोगेंद्र नाथ मंडल का नाम लेते नहीं दिखेंगे। क्योंकि इसके पीछे एक बड़ा कारण है, वह है इसका परिणाम। मंडल ने पूर्वी अविभाजित भारत की सियासत में दलितों का नेतृत्व किया। इतिहास में पहली बार दलित-मुस्लिम गठजोड़ का प्रयोग जोगेंद्र नाथ मंडल ने ही किया था। डॉ० अंबेडकर से उलट उनका इस नए गठबंधन पर अटूट विश्वास था। मुस्लिम लीग के अहम नेता के तौर पर उभरे जोगेंद्र नाथ मंडल ने भारत विभाजन के वक्त अपने दलित अनुयायियों को पाकिस्तान के पक्ष में वोट करने का आदेश दिया था। सिलहट वर्तमान में बांग्लादेश में है। वहाँ हिन्दुओं और मुसलमानों की आबादी लगभग समान थी। मंडल के कहने पर दलित हिन्दुओं ने मुसलमानों का पक्ष लिया और सिलहट पाकिस्तान का भाग बन गया। इस प्रकार से पाकिस्तान मुस्लिम लीग मण्डल के सहयोग से भारत का एक बड़ा हिस्सा हासिल करने में सफल हुआ। यहाँ तक कि जब बंगाल में भयंकर दंगे हुए, तो मंडल ने बंगाल में घूम- घूमकर दलित हिन्दुओं को मुसलमानों के विरुद्ध हथियार उठाने से मना किया। अपने कृत्यों से वह तत्कालीन बंगाल के मुख्यमंत्री सुहरावर्दी के खासमखास बन गए। मंडल का कहना था कि मुसलमान भी दलित हिन्दुओं के समान शोषित और पीड़ित हैं।

१९४७ में बांग्लादेश इलाके के लाखों सवर्ण हिन्दू भारत में आकर बस गए। जबकि मण्डल का कहना मानकर लाखों दलित हिन्दू मुस्लिम एकता के नारे का समर्थन करते हुए पूर्वी पाकिस्तान (आज का बांग्लादेश) में ही बस गए। विभाजन के बाद मुसिलम लीग ने दलित-मुस्लिम गठजोड़ का मान रखते हुए मंडल को

पाकिस्तान का पहला कानून मंत्री बनाया था। वे पाकिस्तान के संविधान लिखने वाली कमेटी के अध्यक्ष भी रहे थे। जोगेंद्र नाथ मंडल ने वैसे ही पाकिस्तान का संविधान रचा है, जैसे बाबासाहेब ने भारत का संविधान। पर छल अधिक दिनों तक नहीं छुप सकता। अब मुस्लिम लीग को दलित-मुस्लिम एकता का ढोंग करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। उनके लिए हर गैर-मुस्लिम काफिर के समान था चाहे वह सवर्ण हो चाहे वह दलित हो। पूर्वी पाकिस्तान में धीरे- धीरे मण्डल की अहमियत खत्म होती गई। उनके कहे पर रुके दलित हिन्दुओं पर मज़हबी अत्याचार आरम्भ हो गए। १९५० में पूर्वी पाकिस्तान में अनेक दलित हिन्दुओं को मार दिया गया। दलित हिन्दुओं का समााजिक बहिष्कार कर दिया गया। न उनसे कोई व्यापारिक सम्बन्ध रखता था। न ही कोई उनकी सहायता करना चाहता था। ३०% दलित हिन्दू जनसंख्या का भविष्य अन्धकारमय हो गया। यह देख मण्डल ने दुःखी होकर जिन्ना को कई पत्र लिखे। उनके भाव कुछ इस प्रकार से थे-

मंडल लिखते हैं-

"मुस्लिम लोग हिन्दू वकीलों, डॉक्टरों, दुकानदारों और कारोबारियों आदि का बहिष्कार करने लगे। जिसकी वजह से इन लोगों को जीविका की तलाश में पश्चिम बंगाल जाने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। गैर-मुस्लिमों के संग नौकरियों में अक्सर भेदभाव होता है। लोग हिन्दुओं के साथ खान-पान भी पसंद नहीं करते। पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं (दलित-सवर्ण सभी) के घरों को आधिकारिक प्रक्रिया पूरा किए बगैर कब्जा कर लिया गया। हिन्दू मकान मालिकों को मुस्लिम किरायेदारों ने किराया देना काफी पहले बंद कर दिया। ऐसे भेदभाव भरे माहौल में हिन्दू कैसे जीवन यापन करें।"

जोगेन्द्र नाथ मंडल ने कार्यवाही हेतु बार-बार चिठ्ठियाँ लिखीं। पर इस्लामिक सरकार को न तो कुछ करना था, न किया। आखिर उसे समझ आ गया कि उसने किस पर भरोसा करने की मूर्खता कर दी है। ऐसे माहौल में जोगेंद्र नाथ मंडल भी भेदभाव का स्वयं शिकार हुए। उनकी मानसिक अवस्था हताशाजनक हो गई। उन्हें अपना भविष्य पूरी तरह अंधकारपूर्ण दिखने लगा। तत्कालीन पाकिस्तान के प्रधानमंत्री को अपना त्यागपत्र देकर १९५० में बेइज्जत हो जोगेंद्र नाथ मंडल भारत लौट आया। भारत के पश्चिम बंगाल के बनगांव में वो गुमनामी की जिन्दगी जीता रहा। अपने किये पर १८ साल पछताते हुए आखिर ५ अक्टूबर १९६८ को उसने गुमनामी में ही अंतिम साँसें लीं।

मण्डल तो वापस आ गया लेकिन उनके गरीब अनुयायी वहीं रह गये। अनेक भाग कर भारत आ गए। अनेक बेइज्जत हुए। अनेक मुसलमान बन गये। अनेकों ने द्वितीय दर्जे का जीवन जीते हुए अपमान का घूंट पिया। मुसलमानों ने उन्हें मैला उठवाने जैसे कामों में लगाया। आखिर भूखे पेट उन्हें स्वीकार करना पड़ा। १९७१ के पश्चात् बांग्लादेश बन गया मगर मैला उठवाने का कार्य आज भी पाकिस्तान में गैर मुस्लिमों अर्थात् दलित हिन्दुओं और वाल्मीकि समाज के धर्मान्तिरित ईसाइयों से करवाया जाता है। इसके साथ-साथ उन्हें कभी उच्च शिक्षा भी प्राप्त करने नहीं दिया जाता, उनकी कभी ऊँची नौकरियाँ नहीं लगतीं। क्यूंकि पाकिस्तानी मुसलमानों का मानना है कि अगर ये लोग पढ़ लिख गए तो फिर कभी मैला नहीं उठाएंगे। एक मुसलमान के लिए तो ऐसा काम करना हराम है।

यह है दलित-मुस्लिम एकता की जमीनी हकीकत। भारत में भी जो तथाकथित जातिगत राजनीति करने वाले नेता जय भीम-जय भीम का नारा लगा रहे हैं। उनके समर्थक इस लेख को पढ़कर अपने भविष्य, अपनी आने वाली पीढ़ियों के साथ क्या होगा! इसका आसानी से अंदाजा लगा सकते हैं। स्वतंत्र भारत में दलित समाज की स्थिति और पाकिस्तान-बांग्लादेश में दलित समाज की स्थिति भविष्य का आइना है।

❑❑

हिन्दू मुस्लिम एकता कैसी?

(कृष्ण चन्द्र गर्ग पंचकूला, हरियाणा,दूर0ः-0172.4010679)

१. हिन्दू जिसे अधर्म मानते हैं मुसलमान उसे ठीक मानते हैं। झूठ बोलना, धोखा देना, हिन्दुओं को काफिर मानकर उन्हें निर्दोष होने पर भी प्रताड़ित करना, सताना, जान से मार देना, उन्हें मौत का डर दिखाकर मुसलमान बनाना, उनकी स्त्रियों से बलात्कार करना, उनकी सम्पत्ति को लूटना, उनके मन्दिरों-मूर्तियों को तोड़ना- ये सब काम इस्लाम में उचित माने जाते हैं। परन्तु हिन्दुओं में ये सब काम महापाप माने जाते हैं।

२. निर्दोष हिन्दू को अपने हाथ से मारने वाला मुसलमान सबसे बड़ी पदवी 'गाज़ी' की पाता है। हिन्दू से लड़ते हुए अगर मुसलमान मारा जाए, तो वह शहीद कहलाता है। उसे मरने के बाद ७२ हूरें- बहुत खूबसूरत नौजवान लड़कियाँ, शराब की नहरें तथा ऐशो आराम का और बहुत सा सामान मिलने की बात कह कर लड़ने के लिए उकसाया जाता है।

३. गाय, बकरी आदि गुणकारी पशुओं को 'हलाल' के नाम से तड़पा- तड़पा कर मारना और फिर उनका मांस खाना इस्लाम में सही माना गया है। हिन्दू गाय को मारना तो दूर उसे पैर से छूना भी पाप मानते हैं।

४. भारत पर आक्रमण करने वाले महमूद गजनवी, मुहम्मद गौरी, बाबर आदि लोग मुसलमानों के आदर्श हैं जबकि इन आक्रमणकारियों ने हिन्दुओं पर अथाह अत्याचार किये हैं- लाखों की संख्या में हिन्दुओं को कत्ल किया है, करोड़ों हिन्दुओं को मौत का डर दिखाकर मुसलमान बनाया है, लाखों हिन्दू औरतों से बलात्कार किया है, हिन्दुओं के हजारों मन्दिर और मूर्तियाँ तोड़ी हैं, उनसे अरबों रुपयों का सोना, चाँदी, हीरे-जवाहरात आदि धन लूट कर ले गए हैं।

५. मुसलमान के लिए स्त्रियाँ पुरुषों की खेती हैं। वे जैसे चाहे उनका उपभोग करें और जैसे चाहें उनसे व्यवहार करें। उन्हें परदे में रखें, उन्हें डण्डे से पीटें, तीन बार 'तलाक' का शब्द बोलकर तलाक देकर घर से निकाल दें। एक पत्नी के रहते दूसरी, तीसरी व चौथी पत्नी ले आएं। अदालत में औरत की गवाही आधी है। परन्तु हिन्दुओं में स्त्री का स्थान पुरुष के बराबर माना गया है। स्त्री से सदा ही प्रेम और सत्कार- पूर्ण व्यवहार की बात हिन्दू शास्त्रों में कही गई है।

६. मुसलमानों के लिए भाईचारा मजहब का है, देश का नहीं। मुसलमान दुनिया में कहीं भी है वह उसका भाई है। मुसलमानों के लिए मजहब का रिश्ता पहले है और देश का बाद में। मुसलमान के लिए हिन्दू तो काफिर है। वह मुसलमान बन जाए तो ठीक, नहीं तो वह कतल किए जाने के काबिल है। इस्लाम में एक मुसलमान का गैर मुसलमान से मित्रता करना अपराध माना जाता है।

७. जेहाद- गैर मुसलमानों से हथियारबन्द संघर्ष करने का नाम जेहाद है। गैर मुसलमानों को मुसलमान बनाने के लिए सब प्रकार के हथकण्डे अपनाना व बल का प्रयोग करना, अगर न बनें तो उन्हें जान से मार देना जेहाद है। जेहाद इस्लाम में सबसे अधिक पवित्र काम माना जाता है।

८. कुरान- कुरान मुसलमानों का पवित्रतम ग्रन्थ है। कुरान की हर बात को मानना मुसलमानों के लिए अनिवार्य है। कुरान में लिखी किसी बात पर भी शक करना इस्लाम में अपराध है। कुरान में छः हजार से अधिक आयतें हैं। उनमें लगभग एक तिहाई आयतें ऐसी हैं जो गैर मुसलमानों के प्रति नफरत फैलाती हैं ओर बहुत सी आयतें ऐसी हैं जो गैर-मुसलमानों पर अत्याचार करने तथा उन्हें तड़पा- तड़पा कर जान से मारने का आदेश देती हैं।

९. लगभग १४०० साल पहले मुहम्मद ने इस्लाम की स्थान की थी। मुहम्मद को मुसलमान पैगम्बर मानते हैं और उसका अनुसरण करना अपरा परम धर्म मानते हैं। मुहम्मद ने अपने जीवन में नौ शादियों की थीं। आखिरी शादी ५२ वर्ष की आयु में छः वर्ष की लड़की से की थी और तीन वर्ष बाद जब वह नौ वर्ष की हुई तो उसे अपने पास ले आया था तथा उससे शारीरिक सम्बन्ध बना लिया था।

१०. हिन्दुओं का सारा साहित्य हिन्दी व संस्कृत भाषा में है जबकि मुसलमान उर्दू, अरबी, फारसी को अपनी भाषा मानते हैं और वो साहित्य जिसे वे अपना मानते हैं इन्हीं भाषाओं में है।

❑❑

भौतिकवाद और आध्यात्मिकता

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून,मो0ः-09412985121)

भौतिकवाद आध्यात्मवाद का विलोम शब्द है। पृथिवी, अग्नि, जल, वायु और आकाश को भौतिक पदार्थ कहते हैं। इसमें ईश्वर व जीवात्मा सम्मिलित नहीं हैं। यह दोनों पदार्थ भौतिक न होकर चेतन वा आत्मतत्व हैं जो ज्ञान व कर्म गुणों वाले होते हैं। भौतिक पदार्थ ज्ञान व सम्वेदनाशून्य होते हैं। इनकी अधिक संगति से मनुष्य संवेदनाशून्य वा अल्पसंवेदनावान हो जाता है। जो मनुष्य ईश्वर व जीवात्मा की उपेक्षा कर सृष्टि, शारीरिक व इन्द्रिय सुखों सहित धन व सम्पत्ति को महत्व देते हैं, उन्हें भौतिकवादी कहा जाता है। इसके विपरीत जो मनुष्य ईश्वर व जीवात्मा का अध्ययन कर इन्हें जानते व समझते हैं तथा कुछ समय ईश्वर की उपासना व आत्म-चिन्तन में व्यतीत करते हैं, उन्हें आध्यात्मवादी कहा जाता है। आध्यात्मवाद में ईश्वर की उपासना सहित प्रकृति व पर्यावरण को शुद्ध रखना तथा माता, पिता, आचार्य सहित समाज व देश के प्रति अपने कर्तव्यों को जानकर उनका आचरण व पालन करना अनिवार्य होता है। भौतिकवाद में मनुष्य साँसारिक ज्ञान व विज्ञान विषयों की शिक्षा प्राप्त कर उसका उपयोग उचित व कुछ लोग अनुचित तरीकों से धनोपार्जन आदि कार्यों में लगाते हैं जिससे उनका सारा समय प्रायः शिक्षा प्राप्त कर अपने परिवार के लालन-पालन व धनोपार्जन सहित सुख व सुविधाओं का भोग करने में लगता है। उन्हें अपने सुख का तो ध्यान रहता है परन्तु दूसरों के सुख अर्थात् सम्वेदनाओं व दुःखों की चिन्ता नहीं रहती। ऐसे मनुष्य दूसरों के अधिकार की भी परवाह नहीं करते और उनके प्रति शोषण व अन्याय करते हुए धन व सम्पत्ति के संग्रह द्वारा सुख भोग को ही जीवन का मुख्य उद्देश्य मानकर जीवन व्यतीत करते हैं। यह जीवनशैली मानवीय मूल्यों से शून्य आधुनिकता की देन है। जीवन में त्याग व परोपकार की कमी के कारण ही देश में अधिकांश समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं, जिनका निदान केवल दृष्टिकोण को बदल कर तथा भौतिकवाद व आध्यात्म के सन्तुलन से ही प्राप्त हो सकता है।

जब हम मनुष्य जीवन पर विचार करते हैं, तो हमें ज्ञात होता है कि हमारा जन्म माता-पिता के त्याग व तपस्या की देन है। यदि माता-पिता व आचार्य न हों तो मनुष्य का जन्म सफल नहीं हो सकता है। माता-पिता के त्याग व तपस्या से ही पालित, पोषित और शिक्षित होकर वह संस्कारयुक्त होता है। हमारे इन माता-पिता व आचार्यों को भी एक अदृश्य सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान सत्ता ईश्वर ने उत्पन्न किया है। उसी सत्ता ईश्वर ने सत्य, चित्त, सूक्ष्म, अल्पज्ञ, एकदेशी, ससीम, अनादि व नित्य सत्तायुक्त जीवात्माओं को जन्म व सुख देने के लिये यह संसार बनाया है। यह संसार दुःख व सुखमय दोनों है। मनुष्य १० माह तक माता के गर्भ में रहकर दुःख पाता है। उसके बाद शैशवावस्था में भी वह कुछ वर्ष तक माता-पिता के आश्रय में रहकर सुख व दुःख का अनुभव करता है। माता-पिता से ही वह उठना-बैठना-चलना, भाषा व संस्कार प्राप्त करता है। जीवन में अनेक बार अनेक प्रकार के रोग होने पर मनुष्यों को दुःख प्राप्त होता है और कुछ लोग अनेक प्रकार की दुर्घटनाओं से ग्रस्त होकर दुःखी जीवन व्यतीत करने को विवश होते हैं। यदि किसी के साथ ऐसा कुछ न हो, तो युवावस्था के बाद वृद्धावस्था का आरम्भ हो जाता है जो दिन प्रतिदिन दुःखों की वृद्धि करने वाली होती है। अतः इन सब प्रकार के दुःखों से छूटना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। हमारे प्राचीन विद्वानों जिन्हें हम शास्त्रकार व ऋषि आदि नामों से जानते हैं, उन्होंने मनुष्यों के दुःख निवारण पर विचार किया और बताया

कि सत्य ज्ञान को प्राप्त कर ही मनुष्य अपने दुःखों पर विजय प्राप्त कर सकता है। उन्होंने चिन्तन व अनुसंधान किया और प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर कहा कि सृष्टि में एक सत्य-चित्त-आनन्दस्वरूप सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अनादि, अविनाशी व नित्य सत्ता ईश्वर है। उस ईश्वर का उपदेश व स्वाध्याय द्वारा ज्ञान, ईश्वर की उपासना, परोपकार, दान व सादगीपूर्ण जीवन से ही मनुष्य सभी दुःखों पर विजय प्राप्त कर सकता है। उन्होंने अति-भौतिकवादी जीवन की भी समीक्षा व विश्लेषण किया और इसे मनुष्य जीवन के वर्तमान तथा मृत्योपरान्त जीवन की उन्नति में बाधक व हानिकारक पाया। इसी कारण से भौतिकवाद त्याज्य है तथा भौतिक व आध्यात्म का सन्तुलित जीवन ही श्रेयस्कर है।

मनुष्य की आत्मा एक चेतन सत्ता है। इसे जैसा सुख व दुःख होता है, उसी प्रकार का सुख व दुःख अन्य सभी मनुष्यों व पशु, पक्षी आदि थलचर, नभचर व जलचरों को भी होता है। अतः यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि हमें दूसरों का जो व्यवहार अपने लिए प्रिय है, वही व्यवहार हमें दूसरों के प्रति करना चाहिये। यही कर्तव्य भी है और इसी 'व्यवहार' का नाम धर्म है। मानवीय सम्वेदनायें मनुष्यों को तप व पुरुषार्थ का जीवन व्यतीत करने पर अनुभव होती हैं। सच्ची व अच्छी पुस्तकों का अध्ययन करने पर भी मनुष्य मानवीय सम्वेदनाओं से परिचित हो सकता है। अनेक प्रकार की सच्ची घटनायें एवं आख्यान भी मानवीय सम्वेदनाओं को उद्‌बुध करने में सक्षम होते हैं। अतः हमें मानवीय सम्वेदनाओं का परिचय प्राप्त करने के लिये योगदर्शन आदि पुस्तकों के हिन्दी व अंग्रेजी भाष्य जिसमें हमें सुगमता हो, पढ़ने चाहिये। इससे हम अपने शरीर, ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों सहित अपने मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार व आत्मा आदि को अच्छी प्रकार से समझ कर अपने व दूसरों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन कर न्याय कर पायेंगे। इसके साथ हमें अपने माता, पिता, परिवारजनों, आचार्यों एवं समाज के सज्जन लोगों के प्रति कर्तव्यों तथा व्यवहार को भी जानना है। किन लोगों के हम पर कैसे व कितने उपकार हैं, किसने हमारी उन्नति व वृद्धि में क्या-क्या योगदान किया है, उस सबको जानकर हमें उनका ऋण चुकाना है। माता-पिता व आचार्यों का ऋण सन्तानों व विद्यार्थियों पर सबसे अधिक होता है। हमें उनको सदैव सन्तुष्ट रखने के लिये उनके निवास, भोजन, वस्त्र, चिकित्सा आदि का अपनी सामर्थ्यानुसार ध्यान रखना चाहिये। सत्शास्त्रों में यहाँ तक कहा है कि कोई सन्तान अपने माता-पिता आदि की कितनी भी सेवा कर ले, वह उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकती। यदि हम उनकी सेवा करेंगे, तो इससे वह प्रसन्न होकर हमें आशीर्वाद देंगे जिससे हमारा कल्याण होगा।

यह जानना भी आवश्यक है कि मनुष्य जैसा कर्म करेगा, उसको उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। इसका कारण यह है कि ईश्वर सर्वव्यापक होने से जीवात्माओं व सभी प्राणियों के सभी कर्मों का साक्षी होता है। वह न्यायकारी है। न्याय करने के लिए वह सभी जीवों को उनके सभी कर्मों का सुख व दुःख रूपी भोग कराता है। हमारे सुख व दुःख हमारे वर्तमान व अतीत के कर्मों का ही परिणाम होते हैं। हम शुभ कर्म करेंगे, तो हमें सुख प्राप्त होगा और यदि हम अशुभ अन्याय, शोषण, अनुचित रीति से धनोपार्जन, अभक्ष्य पदार्थों मांस, मदिरा, तला हुआ, बासी व प्रतिकूल अन्न का सेवन करेंगे, तो इसका परिणाम दुःख होना निश्चित है। अतः दुःख निवारण के लिये मानवीय संवेदनाओं सहित अपने वेद निर्दिष्ट कर्तव्यों का पालन करना अनिवार्य है। सभी शास्त्रों का अध्ययन करने पर भी यही तथ्य सम्मुख आता है कि हमारे पूर्वज मनीषियों ने शास्त्रों की रचना मानवीय संवेदनाओं व उनके सुख व दुःख को सामने रखकर उन्हें अधिक से अधिक सुख पहुँचाने के उद्देश्य से ही की है। सभी संस्कृत के पुराने ग्रन्थ शास्त्र की कोटि में नहीं आते। पुराणादि ग्रन्थ त्याज्य कोटि के ग्रन्थ हैं। अतः ऋषियों के बनाये हुए योगदर्शन व सांख्य दर्शन सहित वैशेषिक दर्शन आदि सभी दर्शनों, उपनिषदों, वेदों व सत्यार्थप्रकाश आदि का अध्ययन हम सभी को

शेष पृष्ठ २३ पर

गुरुकुलीय जीवन

(कु0 बबीता शास्त्री, ग्राम-बरका, पत्रा0-बुखरारी, जिला-मथुरा उ0 प्र0)

गुरुकुलीय जीवन वह जीवन है, जो हमें अपनी प्राचीन संस्कृति, सादगी एवं पूर्वजों की संस्कृति से जोड़े रखता है। गुरु + कुल= गुरुओं का कुल। इसे आचार्यकुल या ऋषिकुल भी कहते हैं। गुरु शब्द 'गृ शब्दे' धातु से 'कृग्रोरुच्च' इस औणादिक सूत्र से कु प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। गुरु अर्थात् **''यः धर्मान् शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरुः''** जो धर्म का उपदेश करता है, वह गुरु है। गुरु ही विद्यार्थी का पूर्णरूप से विकास कर सकता है।

माता-पिता बच्चे का बाल्यकाल तक ही पालन पोषण करते हैं। परन्तु उसके सर्वांगीण व्यक्तित्व के विकास के लिए किसी विद्यावान्, सदाचारी, सर्वहितैषी, छात्रोन्नति पारायण गुरु या आचार्य की आवश्यकता होती है, जो हमें गुरुकुलों में ही मिलते हैं।

इसलिए माता-पिता को अपनी सन्तान को आठ वर्ष की आयु में गुरुकुल में भेजना चाहिए, जिससे वह उत्तम सन्तान बन सके। महर्षि दयानन्द गुरुकुलीय जीवन के पुनरुद्धारक माने जाते हैं। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है -

''सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः''।।

अर्थात् लाड़-प्यार से बच्चा दोषयुक्त तथा दण्ड से गुणयुक्त बनता है। गुरुकुलों में पढ़े हुए विद्यार्थी तेजस्वी, स्वावलम्बी, धार्मिक, विद्वान्, शान्त और शिष्ट होते हैं। क्योंकि गुरुकुलों में आचार्य का एकमात्र उद्देश्य उसे योग्य उत्तम मनुष्य बनाना होता है। गुरुकुल में गुरु शिष्य का सम्बन्ध इतना गहरा होता है, जितना कि गर्भस्थ में बालक का माता के साथ। गर्भ में जैसे माता बालक का पोषण करती है, वैसे ही आचार्य। उपनयन संस्कार कराते समय शिष्य से कहता है-

''मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना तुषस्व बृहपतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम''।।

लोगों को कहते सुना है कि गुरुकुल में बच्चों को सिर्फ उनकी संस्कृति से जोडा जाता है। उनका सर्वांगीण विकास नहीं किया जाता है। लेकिन यह आरोप मिथ्या है। गुरुकुल में बच्चे का चहुँमुखी विकास किया जाता है। गुरुकुलों में चार प्रकार से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलता है।

'आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन,प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेनेति'।।

गुरुकुल में विद्यार्थी को सांस्कृतिक अध्ययन के साथ-साथ भौतिक ज्ञान-विज्ञान व प्रौद्योगिकी का भी अध्ययन कराया जाता है। उनके चारित्रिक एवं आत्मिक विकास की ओर ध्यान दिया जाता है। गुरुकुल का एक विशेष तत्व **तपश्चर्या** है। विद्या के साथ **तप** को भी मुख्य माना जाता है।

''सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेत् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्''।।

अर्थात् सुख की इच्छा करने वाले को विद्या छोड़ देनी चााहिए और विद्या चाहने वाले को सुख छोड़ देना चाहिए। गुरुकुलों में वेद, वेदांग, दर्शन, उपनिषद् आदि ऋषि प्रोक्त आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाता है। गुरुकुलों में यज्ञ आदि का अनुष्ठान सतत होता है। जैसे कि वेदों में प्रमाण भी है- **''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म''** यज्ञ ही सबसे श्रेष्ठ कर्म है। गुरुकुलीय जीवन वह जीवन है, जहाँ वेदमन्त्रों के उच्चारण से चारों दिशाएँ मुखरित हो रही होती हैं। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि छात्र की उत्त्मोत्तम उन्नति के लिए गुरुकुलीय जीवन की महत्वपूर्ण भूमिका है। गुरुकुल में विद्यार्थी की शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति की जाती है। वास्तव में गुरुकुलीय जीवन आदर्श एवं अनुकरणीय जीवन है। जहाँ विद्यार्थी को समाज का एक श्रेष्ठ नागरिक बनने की न केवल प्रेरणा दी जाती है, अपितु बनाने का सतत प्रयास भी किया जाता है।

❑❑

हिन्दी दिवस (14 सितम्बर 2018)

(इन्द्रदेव, सावरकर वाद प्रचार सभा,मो0:-08958778443)

देश में देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली और बोलने वालों की संख्या सर्वाधिक होने के कारण हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा संविधान सभा ने दिया था। हिन्दी नौ राज्यों की राजभाषा है। संस्कृत-मराठी-नेपाली भाषा भी देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती है। यह खेद का विषय है कि हिन्दी भाषी राज्यों में अंग्रेजी-उर्दू-अरबी-फारसी को बढ़ावा दिया जा रहा है। तेलंगाना की सरकारी मोहर में, तेलंगाना सरकार, तेलगू- अंगेजी-उर्दू में लिखा है जबकि हिन्दी प्रेमी संस्थाएं मौन हैं। वे विरोध करें तो हिन्दी में भी तेलंगाना सरकार लिखा जाना आरम्भ हो जाए।

हिन्दी में आधे न और आधे म के लिए बिन्दी का प्रयोग खूब होता है जबकि आधे न्‌ के लिए बिन्दी का प्रयोग पूरी तरह से उचित है लेकिन आधे म्‌ के लिए भी बिन्दी का उपयोग करना गलत है। जैसे मुम्बई लिखना सही है और मुंबई लिखना गलत है क्योंकि इसे मुन्बई भी पढ़ा जा सकता है।

यह विचित्रता है कि मराठी भाषी इ-ई-उ-ऊ-ए-ऐ को हिन्दी की भांति नहीं लिखते हैं बल्कि अि-अी-अु-अू-अे-अै की तरह लिखते हैं इसकी जानकारी तब होती है जब कोई हिन्दी भाषी महाराष्ट्र में जाता है।

विश्व में देवनागरी ही ऐसी लिपि है जिसमें आधे अक्षर भी होते हैं यह हमारे लिए गर्व का विषय है।

गाँधीजी की १४६वीं जयन्ती

१. लोकमान्य तिलक के स्वर्गवासी हो जाने पर, कांग्रेस का नेतृत्व, नरम गुट के गांधी जी को मिल गया। उनकी सोच थी कि बिना मुस्लिमों के सहयोग के, देश स्वतन्त्र नहीं हो पाएगा। चतुर मुस्लिमों ने, सुविधाएं तो ले लीं लेकिन चुनावों में कांग्रेस को बहुत कम वोट दीं फिर भी गांधी का मुस्लिम प्रेम और बढ़ता गया।

२. गोरे-काले का भेदभाव-अस्पृश्यता-छुआछूत-गरीबों का पक्ष लेना- सवर्णों का निम्न जातियों से दुर्व्यवहार का विरोध करना- उपेक्षित बस्तियों में बार-बार जाने से, हिन्दू का बड़ा वर्ग, गांधी का समर्थक बन गया।

३. पोरबन्दर में जन्मे गांधी को श्रद्धानन्द ने महात्मा की उपाधि दी जबकि सुभाष चन्द्र बोस ने ०६.०७.१६४४ को उन्हें पहली बार राष्ट्रपिता कहा जबकि वे १६४७ में डरपोक- कमजोर और असफल नेता सिद्ध हुए फिर भी हिन्दू अभी तक राष्ट्रपिता और महात्मा ही, उन्हें कहता है।

४. यदि गांधी ने कुरान पढ़ी होती तो वे हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात नहीं करते।

५. आपने जिन्ना को कायदे आजम कहा जबकि जिन्ना ने कहा कि गांधी की औकात, एक मुस्लिम चपरासी से भी कम है।

६. जिन्ना ने, हिन्दुओं को राय दी थी कि वे वीर सावरकर को अपना नेता मानें और अपना समर्थन दें लेकिन हिन्दू नहीं माना।

७. आप, हिन्दू महासभा के विरोधी थे लेकिन मुस्लिम लीग को महान संगठन की उपाधि दी।

८. हिन्दू महासभा ने, १६४५-४६ के चुनावों में कहा था कि गांधी-नेहरू की कांग्रेस को वोट देना पाकिस्तान को वोट देने के बराबर है फिर भी लोगों ने कांग्रेस को वोट दिये।

६. बिना किसी धर्मान्तरण प्रक्रिया, गांधी, मन-मस्तिष्क से १६२०-२२ से ही मुसलमान हो चुके थे- राम गोपाल, पत्रकार नई दिल्ली

१०. नेहरू के दादा मुगलवंशी ग्याजुउद्दीन खान उपाख्य गंगाधर कौल थे- अरविन्द घोष।

११. कांग्रेसियों का प्रचण्ड बहुमत सरदार पटेल को

शेष पृष्ठ २५ पर

योगी दयानन्द

(सन्तराम बीए)

ब्रह्मचर्य और तप के बल से ही मृत्यु को जीता जाता है। इसी से महर्षि दयानन्द ने घोर तप किया था। योग में उनका अभ्यास इतना बढा हुआ था कि वे अठारह-अठारह घंटे की समाधि लगा लेते थे। उन्होंने भूख-प्यास और गर्मी-सर्दी सबको जीत लिया था। पौष-माघ का कड़कड़ाता जाड़ा पड़ता था। जोहड़ों का जल जम जाता था। परन्तु तपस्वी दयानन्द केवल एक कौपीन पहने गंगा की अत्यंत ठंडी बालु पर पद्मासन लगाये सारी-सारी रात बिता देते थे। महाराज को इस अवस्था में देखकर यदि कोई भक्त उन पर कम्बल भी डाल जाता तो वे उसे नहीं ओढ़ते थे।

एक समय की बात है। माघ का महीना था। पछुवा का अत्यन्त शीतल पवन बडे वेग से बह रहा था। स्वामीजी महाराज स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर कुटी के बाहर पालथी मारे बैठे थे। बहुत से ठाकुर लोग दर्शनों के लिए आये हुए थे। उन्होंने रुई और ऊन के निहायत गरम कपडे पहन रक्खे थे, फिर भी जाड़े के कारण उनका शरीर काँप रहा था। हाथ- पाँव ठिठुर रहे थे। दाँत से दाँत बज रहे थे। परन्तु स्वामीजी महाराज बडे जोर-शोर से बराबर उपदेश कर रहे थे। शीतल वायु तीर की तरह तन को चीरती जाती थी, किन्तु वे काँपते तक न थे।

उस समय ठाकुर गोपालसिंह ने हाथ जोड़ कर पूछा- महाराज, हम इतने कपड़े पहनने पर भी सर्दी के मारे सिकुड़े जा रहे हैं, परन्तु आप पर शीत का कुछ भी असर नहीं होता। इसका क्या कारण है?

महाराज ने उत्तर दिया- ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास ही इसका कारण है।

उसने कहा- तो हम कैसे जानें?

तब महाराज ने अपने हाथों के अँगूठे घुटनों पर रख कर इस जोर से दबाये कि तत्काल उनके मस्तक पर, ओस के बिन्दुओं के सदृश, पसीने की बूँदे चमकने लगीं। तन पर रमाई हुई सारी मिट्टी भीग गई। बगलों में से पसीना टपटप करके टपक पड़ा। यह देख सभी लोग स्वामीजी महाराज के योगबल की प्रंशसा किये बिना नहीं रह सके। कर्णवास से चलकर स्वामीजी ग्राम-ग्राम में घूमने लगे। एक रोज आप गंगा के दूसरे किनारे समाधि लगाये बैठे थे। रात अधिक बीत चुकी थी। इसलिए गंगा के दूसरे किनारे समाधि लगाये बैठे थे। रात अधिक बीत चुकी थी। इसलिए गंगा के बहने के सिवा और कोई शब्द न सुनाई देता था। चन्द्रमा की चाँदनी खूब छिटक रही थी। उससे पृथिवी और आकाश प्रकाशमान् हो रहे थे। इसके साथ गंगा की की धारा नीलम की लंबी रेखा के समान दृश्य के सौन्दय को और भी बढ़ा रही थी। ऐसे समय में बदायूँ के कलेक्टर साहब अपने किसी यूरोपियन मित्र को साथ लिये शिकार की तलाश में गंगा-तीर पर फिर रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि उस स्थान पर जा पड़ी जहाँ स्वामीजी महाराज योगाभ्यास कर रहे थे। वे उनके निकट जा पहुँचे। चाँदी के सफेद सिहांसन पर जैसे सोने की मूर्ति धरी हो, उसी प्रकार स्वामीजी महाराज के चमकते- दमकते शरीर को उन्होंने सफेद रेत पर बैठे देखा। वे देर तक आश्चर्य के साथ संन्यासी के सुन्दर रूप को देखते रहे। अन्त को जब महारज ने आँखे खोलीं तो कलेक्टर महोदय ने नमस्कार किया। चलते समय उन्होंने स्वामीजी से कहा कि हमें बडा आश्चर्च है कि इतनी सरदी पड रही है, नदी का किनारा है, रात का समय है, और आप बर्फ के समान ठंडी रेत पर एक लंगोट-मात्र पहने मग्न बैठे हैं। क्या आपको जाड़ा नहीं लगता?

स्वामीजी उत्तर देना ही चाहते थे कि कलेक्टर साहब का पादरी साथी बीच में ही बोल उठा, ''खूब मोटा-ताजा मनुष्य है। खाने को अच्छे माल मिलते होंगे। इसे जाड़ा क्या करेगा?''

स्वामीजी ने हंस कर कहा, ''हम दाल चपाती खानेवाले क्या माल खायेंगे। आप अंडा-मुरगी आदि गरम चीजें खाते

हैं। आइए, अपने कोट और पोस्तीने उतार कर मेरे साथ नंगे बैठिए।''

इस पर वह पादरी शर्मिन्दा हो गया।

स्वामीजी महाराज की आध्यात्मिक शक्तियों को देखकर इनके प्रेमीजन दंग रह जाया करते थे। एक दिन प्रयाग में राय बहादुर पण्डित सुन्दरलाल अपने मित्रों को लेकर स्वामीजी के पास गये। महाराज उस समय ध्यान में मग्न थे। इसलिए वे सब चुपचाप बैठे रहे। कोई आध घंटे के बाद महाराज भीतर से बाहर आये। उन सब सज्जनों ने झुक कर प्रणाम किया। इस समय स्वामीजी आप ही आप हंस रहे थे। पण्डित सुन्दरलाल जी ने पूछा, ''आप किस बात पर हंस रहे हैं?''

महाराज ने उत्तर दिया, ''एक मनुष्य मेरी ओर आ रहा है। आप कुछ देर यहाँ ठहरिए। उसके आने पर आपको एक तामाशा दिखाई देगा।''

इस बात के आध घड़ी बाद एक ब्राह्मण मिठाई लिये आ पहुँचा। उसने स्वामीजी को 'नमो नारायण!' करके मिठाई भेंट की और कहा, 'इसमें से थोडा सा भोग लगाइए।''

स्वमीजी ने उससे कहा- ''लो, थोडी सी मिठाई तुम भी खाओ।'' किन्तु उसने न ली। तब महाराज ने उसे डाँट-डपट कर कहा- लेते क्यों नहीं हो?'' वह काँपने लगा, परन्तु मिठाई न ली। तब स्वामीजी ने कहा- यह मनुष्य हमारे लिये मिठाई में विष मिलाकर लाया है।

पण्डित सुन्दरलाल उसके लिए पुलिस बुलवाने लगे। परन्तु महाराज ने कहा- देखो, यह अपने पाप के कारण कितना काँप रहा है। इसे पर्याप्त दण्ड मिल गया है। इसलिए पुलिस न बुलवाइए। स्वामीजी ने उस ब्राह्मण को उपदेश कर विदा कर दिया। राय साहब ने थोडी सी मिठाई कुत्ते को डाली। वह खाते ही छटपटा कर मर गया।

उदयपुर की बात है। एक दिन राणा सज्जनसिंह जी और स्वामी जी के शिष्य सहजानन्द जी आदि कई सज्जन महाराज के पास बैठे थे। महाराज ने श्रीराणा जी से कहा- पण्डित सुन्दरलाल जी यहाँ आ रहे हैं। यदि पहले सूचना दे देते तो उनके लिए सवारी का उचित प्रबंध कर दिया जाता।

राणाजी ने निवेदन किया- भगवन् अब भी गाड़ी भेजी जा सकती है। इस पर स्वामीजी ने कहा- अब तो वे बैलगाड़ी से आ रहे हैं। गाड़ी का एक बैल सफेद और दूसरा चितकबरा है। वे कल यहाँ पहुँच जायेंगे।

महाराज का कथन अगले दिन बिल्कुल ठीक निकला।

❑❑

पृष्ठ १६ का शेष

करना चाहिये। इससे हम भौतिकवाद से होने वाली हानियों व आध्यात्म से होने वाले लाभों को जानकर इस जन्म व परजन्म दोनों में होने वाले दुःखों से बच सकते हैं।

भौतिकवाद व आधुनिकता मनुष्य को कुछ समय के लिए सुख व सुविधायें तो दे सकती हैं परन्तु जीवात्मा के अनन्त काल के जीवन में मनुष्य व उनकी जीवात्माओं का भविष्य स्वास्थ्य व सुख की दृष्टि से हमेशा संदिग्ध रहता है जबकि तप व पुरुषार्थ सहित आध्यात्मिक जीवन से युक्त भौतिकवाद का सन्तुलित जीवन सदैव लाभकारी व श्रेयस्कर होता है। हम मानवीय सम्वेदनाओं को जानकर सबके प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनायें। सबको अपने समान जानकर किसी के अधिकार का हनन न करें। किसी को दुःख व हानि न पहुँचायें। अपने माता-पिता व आचार्य आदि सहित हम जीवन में जिन- जिन मनुष्यों से लाभान्वित हुए हैं उनके प्रति आदर का भाव रखकर उन्हें सुख पहुँचाने का भाव अपने हृदय में रखें, पुरुषार्थी बनें और पुरुषार्थ करते हुए उचित तरीकों से प्रभूत धन अर्जित करें तो इससे मनुष्य जीवन का वास्तविक सुख प्राप्त कर सकते हैं। सार रूप में यही कह सकते हैं कि कोरा भौतिकवाद स्थिर सुख व शान्ति नहीं दे सकता। हमें अपने जीवन में भौतिकवाद के साथ-साथ आध्यात्मिकता को भी उचित मात्रा में स्थान देना होगा तभी हमारा कल्याण होगा। कोरे भौतिकवाद से मानवीय सम्वेदनायें घटती हैं और उससे हमारे शुभचिन्तकों को प्रिय लोगों को दुःख पहुँचता है। हमें अपने दृष्टिकोण को व्यापक बनाकर सबके प्रति सद्भावना का व्यवहार करना है। ओ३म् शम्।

❑❑

जब हिमालय रो पड़ा

(आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक,भीनमाल,मो0:-09414182173)

हिमालय इस भूमंडल का सर्वाधिक पवित्र पर्वत रहा है। यह देव भूमि व ऋषियों की तपस्थली के रूप में सर्वत्र विख्यात रहा है। इस महान् नगराज ने अपनी पवित्र गोद में परमयोगिराज भगवत्पाद महादेव शिवजी एवं योगेश्वरी भगवती उमा देवी के साथ योग साधना के साथ-साथ वैदिक विज्ञान के द्वारा ब्रह्मांड के गंभीर रहस्यों को उद्‌घाटित करते, दुष्ट दलनार्थ पाशुपत जैसे महान् अस्त्रों का निर्माण करते देखा है। इसी हिमगिरी ने परमर्षि भगवान् ब्रह्मा जी, अमित पराक्रमी भगवान् विष्णु जी एवं महान् ऐश्वर्यसंपन्न देवराज इंद्र को योग साधना के साथ-साथ वेद द्वारा भौतिक एवं आध्यात्मिक विद्याओं की गहन साधना करते देखा है। इसी की पावनी गोद में सहस्रों तपःपूत देवों व ऋषि-मुनियों को परमपिता- परमात्मा की अमृतरूपी छाया में आनंद की अनुभूति करते देखा है। इसी की गोद से निःसृत पवित्र गंगा-यमुना आदि सरिताओं के तीर पर आर्य महापुरुषों व योगियों को योगाभ्यास एवं इसके द्वारा वेद विद्याभ्यास करते देखा है। इसी की गोद में दुष्यंत पुत्र भरत जैसे चक्रवर्ती सम्राट पले-बढ़े एवं संस्कारित हुए थे। वैदिक धर्म के महान् संरक्षक योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी जीवनसंगिनी भगवती देवी रुक्मिणी के साथ विवाहोपरान्त गर्भाधान से पूर्व १२ वर्ष परमात्मा की साधना में मग्न रहे थे। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम, महावीर परम विद्वान् बाल ब्रह्मचारी हनुमान्, महान् धनुर्धर अर्जुनादि पांडवों एवं अनेक महापुरुषों का किसी न किसी प्रकार इस महान् पवित्र पर्वतराज से संबंध रहा है।

हे हिमालय! तुम्हें इन सभी महापुरुषों पर बड़ा गर्व था। संभवतः तुम सोचते थे कि इन महापुरुषों की संतति ऐसे ही महान् आदर्शों वाली बनी रहेगी। किंतु धीरे-धीरे इस हिमालय ने इस भारत को बर्बर विदेशी आततायियों से पैरों तले कुचलते देखा और इसने इस भारत के कई टुकड़े होते भी देखे। यह सब दृश्य देखकर तुम घायल अवश्य हुए परंतु टूटे नहीं। तुमने तैमूर, बाबर, अकबर, औरंगजेब, डायर आदि के अत्याचारों को देखा, तब भी तुम टूटे नहीं परंतु जब कथित स्वतंत्र भारत में शासन व न्यायालयों ने वैदिक व भारतीय संस्कृति-सभ्यता पर करारी चोट की, स्वतन्त्रता के नाम पर दुराचारिणी स्वच्छन्दता को सम्मान मिला, तब तुम्हारे हृदय से आह फूट पड़ी। जब सर्वोच्च न्यायालय ने 'लिव इन रिलेशन' के नाम से किसी कन्या व विवाहिता महिला का किसी भी परपुरुष के साथ स्वेच्छया रहने को वैध ठहराया और उसमें भगवान श्रीकृष्ण जी महाराज का नाम घसीटा गया, तब तुम्हारा हृदय टूट गया और आह भी न कर सके। तुम्हारी यह दीनदशा को देखकर प्राचीन ऋषियों व देवों के आत्मा भी भयभीत हो गये। अब दिनांक ०६.०९.२०१८ को पुनः सर्वोच्च न्यायालय ने तुम्हारे हृदय में छुरा घोंप दिया। **समलैंगिकता के घोर पाप व अप्राकृतिक कुकृत्य को वैध बताने से सिद्ध हो गया कि यह देश मनुष्यों के रहने योग्य तो क्या, यहाँ जंगली जानवर व पशु-पक्षी भी भय खएंगे। इस निर्णय से हिमालय का हृदय विदीर्ण होकर आहें भरने लगा।** अब कल के निर्णय को सुनकर जंगली और पालतू पशु-पक्षी भी भागने लगेंगे। उन्हें भय होगा कि ये समलैंगिक कामी व स्वच्छन्द मानव शरीरधारी कहीं उन्हें ही अपनी हवस का शिकार न बना लें। ये जानवर जजों, वकीलों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, मीडियाकर्मियों मानवाधिकारवादियों, उच्च प्रबुद्ध कहाने वाले, सभ्य व प्रगतिशील दिखने वालों को देखकर विशेष रूप से भागेंगे, क्योंकि स्वच्छन्दताजन्य कामज्वर इन्हें ही अधिक सता रहा है। स्वच्छन्द कामुक भोजन, कामुक अध्ययन, कामुक दर्शन-श्रवण, फिर शासन व न्यायालयों के कामुक निर्णयों की मुहर, तब दुधमुँही

बच्चियों पर अत्याचार क्यों नहीं होंगे? अब तो घरेलू चिड़िया व चिड़ा जेसे कामी पक्षी भी इस कामी मानवदेहधारी जानवर को देख कर चीं-चीं करते भाग जाया करेंगे। अब उन्हें जितना भय अपने शिकारी जानवर और मनुष्य का नहीं होगा, उतना भय शिक्षा व सभ्यता का आवरण ओढ़े इस बर्बर कामी व स्वच्छन्द कथित मनुष्य का होगा। इस कथित मनुष्य को जो कुछ भय था, वह दूर हो गया है। देश में राष्ट्रवाद का शंखनाद करने वाले संगठन वा नेता मौन हैं, मानो उनकी वाणी को लकवा मार गया है। उधर एक भगवा-धारी समलैंगिकता का पुरोधा अग्नि के समान रंग का वेश धारण करने वाला एक कथित संन्यासी प्रसन्नता से झूम रहा है। देश-विदेश का मीडिया आनंद मना रहा है।

हे हिमालय! अब सभी कामी चोर की भांति नहीं बल्कि अकड़ कर ये पाप करेंगे। हे पर्वतराज! मैं तुम्हारे दर्द को जानता हूँ। मेरे जैसे अनेक देशभक्त व वेदभक्त भी तुम्हारे दर्द को अनुभव कर हरे हैं। मैं अपने वेदविज्ञान के द्वारा संपूर्ण पापान्धकार को मिटाने की दिशा में शनैः-२ आगे बढ़ रहा हूँ परंतु लगभग जन्म से रुग्ण शरीर व परायों के साथ अपनों का भी विरोध इसमें भारी बाधा उत्पन्न कर रहा है। मैंने जीवन में असत्य भाषण व कर्म को करने की इच्छा भी नहीं की, तब शेष जीवन में भी ऐसा करने की सोच भी नहीं सकता और न असत्य-अधर्म के सम्मुख झुक ही सकता, भले ही कोई भी विपत्ति क्यों न आये। मैंने तुम्हारे दर्द को मिटाने की अचूक दवा को तैयार तो कर लिया है परंतु इसके विस्तृत अनुसंधान, प्रचार व प्रसार में न केवल देश, वेद, ऋषियों व देवों का दर्द अपने हृदय में समेटे ऊर्जावान्, स्वस्थ, बलवान् युवा पीढ़ी का साथ चाहिए, अपितु पर्याप्त संसाधनों के लिए निःस्पृह भामाशाह भी चाहिए। आज जो बौद्धिक दास विदेशी ज्ञान विज्ञान व सभ्यता को अपना आदर्श मानते हैं तथा प्राचीन भारतीय व वैदिक ज्ञान विज्ञान को दीन व निकृष्ट मानकर स्वयं को ही मूर्खों का वंशज मानते हैं, उनके मनोरोग व बौद्धिक दासत्व को नष्ट करने की दवा मेरे पास है, जो चाहे, आकर ले सकता है।

हे नगराज! कैसी विडंबना है कि मैं इन अभागे भारतीयों को महाबुद्धिमान् व पवित्रात्मा पूर्वजों का वंशज बताता हूँ, तो ये मंदबुद्धि व मनोरोगी भारतीय मुझे ही गाली प्रदान करते हुए घोषणापूर्वक कहते हैं कि नहीं. ... हम तो मूर्खों के वंशज हैं, हम बन्दर आदि पशुओं के वंशज हैं। ऐसे ही अभागे समलैंगिकता व 'लिव इन रिलेशन' जैसे स्वच्छन्दी कानूनों पर नग्न नृत्य करते हैं। ये कानून तो उदाहरण मात्र हैं, अभी तो बोद्धिक दासत्व व निकृष्ट पशुता का प्रारंभ है। अभी तो कुछ सम्बन्ध पवित्र बचे हैं, धीरे-धीरे कानून इन्हें भी नष्ट भ्रष्ट कर देंगे। असुरों, राक्षसों व पिशाचों के आत्मा भी इन कथित प्रगतिशीलों के आचरण पर लजायेंगे। परंतु हे हिमालय! धैर्य रखो, मेरे पास इनके सुधारने के उपाय हैं, संभवतः हजारों सज्जन देशभक्त भी अभी इस आर्य समाज, हिन्दू समाज वा देश में विद्यमान हैं। वे एक होकर वैदिक ज्ञान-विज्ञान के ध्वज के नीचे आकर इस दासत्व के विरुद्ध संघर्ष अवश्य करेंगे, ऐसी मैं आशा करता हूँ। यदि ऐसा नहीं हुआ, तो मैं भी तेरी भांति टूट जाऊंगा। इस विषम परिस्थिति व दुर्बल स्वास्थ्य एवं संसाधनों के अभाव में मैं भी कहीं शांत हो जाऊंगा। ❑❑

पृष्ठ २१ का शेष

प्रथम प्रधानमंत्री बनाने के पक्ष में था लेकिन मुस्लिम प्रेमी गांधी ने, लोकतन्त्र की हत्या करके, मुगलवंशी- अय्याश प्रवृत्ति के- अदूरदर्शी नेहरू को, जबर्दस्ती प्रधानमंत्री बनवा दिया जिसकी गलत सोच- मानसिकता के कारण देश में रावण राज की स्थिति चल रही है फिर भी हिन्दु बुद्धिजीवी- विद्वान् मूक दर्शक बने हुए हैं और यह मान रहे हैं कि मुस्लिम शासन पुनः आएगा। ईश्वर, हिन्दू को, सावरकारवादी बनने की प्रेरणा दे ताकि देश बचे और खंडित भारत, मुस्लिम हिन्दुस्तान न बने। ❑❑

को वेदानुद्धरिष्यति

(स्वामी विवेकानन्द सरस्वती, कुलाधिपति गुरुकुल प्रभात आश्रम)

को वेदानुद्धरिष्यति, यह वाक्य किसी राजकुमारी के मुख से तब निकला, जब अवैदिकों के द्वारा वेदविरुद्ध वेदों की घोर निंदा और अवमानना की जा रही थी। उस समय वह अत्यन्त व्यथित थी क्योंकि उसको वेदों का इस प्रकार से तिरस्कार असह्य हो गया था। और वह ऊँचे राजप्रासाद पर जाकर अपने आप को असहाय अनुभव करते हुए कह रही थी, **"किं करोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति"** अर्थात् अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? क्योंकि वेदविरोधियों का दुर्दान्त आक्रमण हो रहा है, ऐसी परिस्थिति में वेदों की रक्षा कौन करेगा? उसी समय नीचे मार्ग पर चलते हुए उस समय के उद्‌भट विद्वान् आचार्य कुमारिल भट्ट के कानों में यह वाक्य पड़ा। उस राजबाला के इस असहाय वेदनापूर्ण वाक्य को सुनकर वे अत्यन्त आहत हुए और तत्काल उन्होंने उसको सम्बोधित करते हुए कहा - **"मा रुदिहि वरारोहे भट्टाचार्योऽस्ति भूतले"** अर्थात् हे राजबाले! तुम वेदों के विरोधियों द्वारा इस प्रकार से विनाश को देखकर रोदन मत करो। तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि कुमारिल भट्ट उन विरोधियों के आक्रमण का प्रत्युत्तर देने के लिए सन्नद्ध है। उस महान आचार्य ने उनका उत्तर देने के लिये उन पर सिंहवत् आक्रमण कर दिया। वेदविरोधियों का दल छिन्न-भिन्न होने लगा। उनके सम्पूर्ण क्रिया-कलाप प्रभावहीन होने लगे। उसी समय में वेदविरोधियों के आक्रमण को प्रभावहीन बनाने के लिए आद्य शंकराचार्य का प्रादुर्भाव हुआ तथा इस आचार्यप्रवर ने भी वेदों की रक्षा का शंखनाद किया। आज वर्तमान में जो वेद उपलब्ध होते हैं, वह उन आचार्यद्वय के अक्लान्त पुरुषार्थ का फल है। इसके पश्चात् ही सायणाचार्य प्रभृति तथा इनसे भी पूर्ववर्ती आचार्यों ने भी अपने बुद्धिबल से वेदरक्षा का प्रयास किया। किन्तु सभी आचार्यों का यह प्रयास एकदेशीय था। इनका ध्येय **सर्वं वेदात् प्रसिद्धय**ति की ओर न जाकर कुछ यज्ञ-कर्मकाण्डों तथा आत्म-साधना तक ही सीमित रहा। वे विनियोग के जाल में इतने आबद्ध थे कि यज्ञ-कर्मकाण्ड के अतिरिक्त भी वेदों का कुछ महत्वपूर्ण और अर्थ हो सकता है, की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया। अतः वेद अति संकुचित हो गये क्योंकि उनका प्रयोगस्थल अत्यन्त सुकुचित हो गया था।

मनु के शब्दों में वेद, **सर्वज्ञानमयो हि सः** अर्थात् जो सभी ज्ञान-विज्ञान के आकर थे, वह कर्मकाण्ड के साधक के रूप में ही रह गये थे। संस्कृत से तथा वेदार्थ ज्ञान की परम्परा से सर्वथा शून्य यहूदी, ईसाई मतावलम्बियों को सायणादि के वेदभष्यों को देखकर बड़ा बल प्राप्त हुआ क्योंकि उन्होंने इनके वेदार्थों को देख कर ही वेदों पर आक्षेप प्रारम्भ किये तथा चार्वाक के स्वर में स्वर मिलाते हुए कहने लगे-

त्रयो वेदस्य कर्त्तारः धूर्त-भाण्ड-निशाचराः।

वेदभक्त जनता किंकर्तव्यविमूढ़ होकर मूकवत् बनकर दर्शक बनी रही या बाबावाक्यं प्रमाणम् कहकर लकीर पीटती रही क्योंकि इस विनियोग एवं अदृष्ट उत्पत्ति के अतिरिक्त भी वेदार्थ का कुछ महत्त्व है, वह नहीं समझ पा रही थी। ऐसी विकट परिस्थिति में **"सर्वज्ञानमयो हि सः, सर्वं वेदात् प्रसिध्यति"** इन वाक्यों को प्रामाणिक मानते हुए ऋषि दयानन्द ने पुनः वेदरक्षा का डिण्डिम घोष कर दिया और प्राचीन ऋषि-महर्षियों की वेदार्थ करने की परम्परा का शुभारम्भ किया। उनके सम्मुख उल्लिखित यह वाक्य सदा उपस्थित रहता था और वे निश्चयपूर्वक ये समझ रहे थे कि वेदज्ञान के अतिरिक्त और किसी प्रकार के ज्ञान से भारत ही नहीं, अपितु विश्व की मानवता का कल्याण नहीं हो सकता। वेद

सूर्य के प्रकाश से विश्व तभी आलोकित हो सकता है, जब वेदविरोधियों द्वारा फैलाये अज्ञान रूपी मेघ का सर्वनाश हो और वे इस कार्य में संलग्न हो गये। उन्होंने विश्व के मानवों को यह समझाने का प्रयास किया कि जैसे पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश सभी मनुष्य के लिए उपादेय हैं, उसी प्रकार वेद भी किसी भी भेदभाव के बिना मनुष्यमात्र के लिये उपयोगी हैं। अतः प्रथम इस स्तर पर उन्होंने अपभाष्यों का अपाकरण कर शुद्ध वैदिक वेदार्थ प्रक्रिया का पुनः सञ्चार किया। ऋषि दयानन्द की यह विशेषता थी कि उन्होंने सच्चे हृदय से किसी मत-वाद में न उलझ कर यथार्थ वेद के अर्थ को लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करना प्ररम्भ किया। इसका सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि वेदभक्ति में वे कल्पना की उड़ान में कभी नहीं उड़े। अपने वेदभाष्यों के प्रारूप को तथाकथित वेदभक्तों सायण, उव्वट, महीधर आदि के अनुगामी तथा वेदविरोधी चार्वाक समर्थक एवं पाश्चात्य विद्वानों के सन्निकट अवलोकनार्थ भेजा। जिससे वेदविरोधियों के दुर्जेय कहे जाने वाले अस्त्र-शस्त्र एवं दुर्ग प्रभावहीन तथा दोलायमान होने लगे और वे आक्रान्ता अपने आप को कुछ प्रभावहीन तथा हतप्रभ अनुभव करने लगे एवं आत्मसुरक्षा की स्थिति में आ गये। ऋषि दयानन्द ने जिस ब्रह्मास्त्र का प्रयोग वेदार्थ में किया, वह नूतन नहीं था। लौकिक काव्यों में जिस प्रकार से अलंकारों के प्रयोग से उस काव्य की महिमा बढ़ती है तथा उनके अनेक अर्थ होते हैं, उसी प्रकार उन्होंने वेद महाकाव्य **"देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति"** को समझने का उद्योग किया। इसका सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि मनु का वाक्य **"सर्वज्ञानमयो हि सः, सर्वं वेदात् प्रसिध्यति"** यह यथार्थ में प्रतीत होने लगा।

इसी श्रृंखला में अनेक विद्वानों ने प्रयास किया। **किन्तु अपने समय के वेदार्थ के महान् चिन्तक तथा आर्ष परम्परा के अनन्य भक्त श्री स्वामी समर्पणानन्द जी ने भी इस पद्धति को सर्वात्मना आत्मसात् किया।** यद्यपि विभिन्न क्षेत्रों में भी उनकी प्रतिभा की अप्रत्याहत गति थी। पुनरपि वेदनिष्ठा एवं भक्ति के कारण अपनी प्रतिभा का प्रयोग सच्चे वेदार्थ को जानने में प्रयुक्त किया। उनके जीवन का भी लक्ष्य एक मात्र वेदों का उद्धार ही था। **सोम, स्वर्ग, मरुत् तथा शतपथ में एक पथ, वेदों के सम्बन्ध में क्या जानो क्या भूलो, अद्भुत कुमारसम्भव** आदि लघु ग्रन्थ उनकी प्रतिभा के जाज्वल्यमान उदाहरण हैं। **पञ्चयज्ञ प्रकाश, कायाकल्प** तो दैनिक यज्ञों के प्रकाश तथा वैदिक वर्ण-व्यवस्था के पोषक सिद्ध होते हैं। पाश्चात्य विद्वानों के कुतर्कों को कुण्ठित करते हुए **ऋग्वेदमण्डलमणिसूक्त** अमूल्य ग्रन्थ का लेखन भी किया। गीता का सामर्पण भाष्य, जो उन्हीं के नाम से सामर्पण भाष्य के रूप में जाना जाता ह। इसने भी भारतीय संस्कृति एवं परम्परा पर प्रहार करने वालों पर वज्रपात किया।

अब मनु का यह वाक्य **"सर्वज्ञानमयो हि सः"** तथा ऋषि दयानन्द का उस मनुवाक्य का अनुवाद "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है", प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगा। किन्तु वर्तमान समय में सबसे बड़ी समस्या यह है कि आज भी हमारा विद्वत्समुदाय सायणादि वेदभाष्यकारों के मोह से अपने को मुक्त नहीं कर पा रहा है तथा सायण के ही अनुकरणकर्त्ता पाश्चात्य विद्वानों के बुद्धिपाश में बंधा हुआ है।

आज हम सभी का यह कर्तव्य होजाता है कि जिस प्रकार आचार्य कुमारिल भट्ट, आद्य शंकर, यास्क, ऋषि दयानन्द ने जिस वेदार्थ सरणी का आश्रय लेकर वेद सूर्य द्वारा अज्ञान के मेघों को छिन्न-भिन्न कर जनता के समक्ष उसे पुनः प्रस्तुत किया। उसी प्रकार हम सभी का लक्ष्य सायणादि आचार्यों की वेदार्थ प्रक्रिया का रक्षण न हो कर वेद की रक्षा करना होना चाहिये। उन आचार्यो ने अपने-अपने समय में अपने अतुल पुरुषार्थ से वेद की रक्षा की। हमें भी अपने न्यूनाधिक पुरुषार्थ से वेदों की रक्षा का संकल्प लेना चाहिए और इस समय हम भट्ट कुमारिल के शब्दों को कुछ परिवर्त्तित कर सस्वर सम्भूय कहें- **वेदरक्षकाः भूतले वयम्।**

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/१०/२०१८
भार- ४० ग्राम

अक्टूबर 2018

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२०
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2018-20

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....................
ग्राम.....................
डा0 ....
जिला.....................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।